श्रीमद्भगवत गीता भाषा

श्री स्वामी किशोरदास कृष्णदास कृत

श्री ॐ नमो भगवते वासुदेवाय वासुदेव विश्वेश्वगः।
आदि पुरुषः अपरम्पार अलेख पुरुषायनमः॥

दोहा—जगत चन्दु ज्योति स्वरूप जिय की जाननहार।
हरि यश माँगन आयो दास प्रभु के द्वार ॥ १ ॥

चौनक श्री भगवान जी ने जो गीता ज्ञान अर्जुन भक्त को दिया है मुझको मिले, हे भय भंजन भगवान् श्री कृष्ण जी यह किशोरदास मांगता है हे प्रभु गीता ज्ञान के उच्चारण करने से तुम पूरणब्रह्म को पाते हैं। हे प्रभु मैं आपके चरणों की शरण

हूं आप परम प्रवीन हो और मैं आपकी शरण में पड़ा हूं। किशोरदास और कृष्णदास दीन गरीब हैं और आप सन्तों की विनती को मान लेते हो, हे कमलावल्लभ श्रीकृष्ण भगवान् जी कृपा निधानजी तेरे सन्तों के वास्ते मैं यह गीता ज्ञान भाषा में कहता हूं।

श्रीगीता के ज्ञान की कथा आरम्भ हुई

पहला अध्याय—विषाद योग

जब कौरव और पांडव महाभारत के युद्ध को चले धृतराष्ट्रने कहा मैं भी युद्ध का कौतुक देखने चलूं तब श्रीव्यास जी ने कहा हे राजन् तेरे तो नेत्र नहीं हैं नेत्रों बिना क्या देखोगे तब राजा धृतराष्ट्र ने कहा हे प्रभु जी देखूंगा नहीं तो श्रवण

करूंगा तब व्यासदेव ने कहा राजन् तेरा सारथी संजय मेरा शिष्य है जो कुछ महाभारत के युद्ध की लीला कुरुक्षेत्र में होगी सो तुझको यहां बैठे ही श्रवण करावेगा जब व्यासजी के कमल मुखसे यह बचन सुने तब संजय ने श्री व्यासदेवजी के चरणों में नमस्कार किया और हाथ जोड़कर विनती की कि हे प्रभुजी महाभारत के युद्धका चरित्रतो कुरुक्षेत्र में होगा और मैं हस्तिनापुर में रहूंगा और आपने जो आज्ञा की है कि राजन् तुमको यहां बैठे ही युद्ध का कौतुक संजय कहेगा सो हे प्रभु यहां हस्तिनापुर में कुरुक्षेत्र की लीला कैसे जानूंगा और राजा से किस भांति कहूंगा जब इस प्रकार संजय ने व्यासदेवजी से विनती की तब श्रीव्यासदेवजी ने प्रसन्न होकर संजय को यह बचन कहा कि हे संजय मेरी कृपा से

तुझे यहां ही सब दिखाई देवेगा। और बुद्धि के नेत्रों से सूझेगा जब व्यासजी ने यह वर दिया उसी समय संजयकी दिव्यदृष्टि हुई और बुद्धि भी उसकी दिव्य भई। अब आगे महाभारत का कौतुक कहते हैं सो सुनो सात अक्षौणी सेना पाण्डवों की और ग्यारह अक्षौणी सेना कौरवों की यह दोनों सेना इकट्ठी होकर कुरुक्षेत्र में पहुंची अब राजा धृतराष्ट्र संजय से पूछते हैं। धृतराष्ट्रोवाच- हे संजय धर्म के क्षेत्र कुरुक्षेत्र में मेरे और पांडव के पुत्रों ने क्या किया सो कहो ? राजा का बचन सुनकर संजय बोला। संजयोवाच हे राजा तेरे पुत्र दुर्योधन ने पांडवों की सेना देखी कि कैसी है सेना भलीभांति जिसकी पंक्ति बनी है देखकर राजा ने अपने गुरु द्रोणाचार्य के निकट जाकर यह विनती

की । हे आचार्य जी देखो तो पांडवों की सेना का समूह और सेना की कैसी भली भांति पंक्ति बनी है और द्रोपद का पुत्र धृष्टद्युमन जी तुम्हारा शिष्य है कैसा बुद्धिमान है जिसने पांडवों की सेना की पंक्ति इस भांति बनाई है और जो पाडवों की सेना के मुख्य योद्धा हैं तिनके नाम दुर्योधन द्रोणाचार्य को सुनाते हैं इस सेना में गदाधारी भीम धनुषधारी अर्जुन और राजा युयुधान जा विराट राजाद्रुपद महारथी धष्टकेतु चेकितान और बड़ा बलवान काशीराज और पुरुजित कुन्तिभोज मनुष्यों में श्रेष्ठ शैब्य युधामन्यु और विक्रांत बड़ा बलवान उत्तमौजा सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु और द्रोपदी के पुत्र सभी महारथी हैं अब दुर्योधन अपनी सेना के मुख्य योधाओं के नाम और प्रमाण सुनाते हैं हे

आचार्यजी अब जो मेरी सेना के मुख्य योधा हैं— ब्राह्मणों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्यजी तिनके नाम सुनो। प्रथम तो आप और भीष्म जी कर्ण कृपाचार्यजी सांमतिंजय अश्वस्थामा विकरण सोमदत्त और जयद्रथ इनके अतिरिक्त और भी योधा हैं जिन्होंने मेरे निमित्त अपने जीवन त्याग दिये हैं अनेक प्रकार के शस्त्रधारी हैं जो युद्ध करने में बड़े प्रवीण और चतुर हैं हमारी सेना ग्यारह अक्षौणी और पांडवों की सेना सात अक्षौणी है हमारी सेना का अधिकारी और रक्षक भीष्म है और पांडवों की सेना का अधिकारी और रक्षक भीमसेन है तब दुर्योधन अपनी सेना को कहे है जितने तुम हमारी सेना के लोग हो सो सभी भीष्म की रक्षा करने हारे हो और जितने शस्त्र आने के मार्ग हैं तिन

सब मार्गों से भीष्म की रक्षा करो दुर्योधन के मुख से भीष्म आदि योधाओं ने यह वचन सुना और उसके सुख उपजीवन अर्थ कौरवों में जो बड़ा वृद्ध भीष्मपितामह है सो प्रथम सिंह की नाईं गर्जा, गर्ज कर अपना प्रतापवान् शंख बजाया जिसके उपरान्त सारी दुर्योधन की सेना ने शंख बजाए। भेरी ढोल और रणसिंह बजाए दमामे और गोमुख इत्यादि से लेकर और सभी बजंत्र अनेक प्रकार के सारी सेना ने एकत्र बजाए। तिन बजंत्रों का इकट्ठा शब्द होता भया अब पाडवों की सेना के बजंत्र सुनो प्रथम तो जिस रथपर श्रीकृष्णभगवान् विराजमान हैं तिस बड़े रथ की सारी सामग्री कंचन की है और सारे रत्नों से जड़ित है जैसे वर्षा ऋतुका मेघ गरजे है वैसे ही रथ के पहियों

का शब्द है अब घोड़ों की शोभा कहे हैं जैसे गो का दूध होता है तैसा तो उन घोड़ों का सुन्दर रंग है और जैसा कार्तिक का फूला हुआ कमल होता है ऐसा सुन्दर उनका मुख है और अति सुन्दर हैं गरदन जिनकी सुन्दर हैं कान और पूँछ अति सुन्दर हैं और चरणों में स्वर्ण के नूपुर पड़े हैं यह उन घोड़ों की शोभा है ऐसे सुन्दर रथ पर सारथी भक्तवत्सल सत्यस्वरूप आनन्द-मूर्ति श्रीकृष्ण भगवान जी विराजमान हैं और योधा के ठौर अर्जुन भक्त विराजमान हैं उन्होंने भी दिव्य शंख बजाए प्रथम ऋषिकेश श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने पंचजन्यनामा शंख बजाया देवदत्त नामा शंख अर्जुन नें और पौंडर नामा शंख भीमसेन ने बजाया सो भीमसेन कैसा है जिसका उदर और

कमर बड़ी है, और अनंत विजयनामा शंख कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने, सुघोषनामा शंख नकुल ने, मणिपुष्प नामा शंख सहदेव ने बजाया, बड़े धनुषधारी काशीराज और महारथी शिखंडी ने भी बजाया धृष्टद्युम्न ने बजाया और राजा विराट ने भी बजाया और अपराजित सात्यकी यादवने बजाया और द्रुपद ने भी बजाया और द्रोपदी के पुत्रों ने भी बजाए और जितने पांडवों की सेना के राजे थे सबने शंख बजाए और सुभद्रा के पुत्र महाबाहु अभिमन्यु ने भी बजाया इन सबने अपने अपने भिन्न भिन्न शंख बजाये तिन शंखों का शब्द सुनकर धृतराष्ट्र के पुत्रों के हृदय विदीर्ण हुये धरती और आकाश शब्दों से भर गया इसके उपरान्त धृतराष्ट्र के पुत्रों की सेना अर्जुन ने

देखा जब दोनों ओर की सेना के शस्त्र चलने लगे तब अपना धनुष सिर ऊपर फेर कर पांडव अर्जुन ऋषिकेष श्रीकृष्ण भगवानजी से बोलता भया हे अच्युत अविनाशी मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच लेजाकर खड़ा करो तब देखूं हमारे साथ युद्ध करने को कौन कौन आये हैं प्राणों को और धन को त्याग कर जो आये हैं तिन सबको मैं देखूंगा। संजयोवाच-संजय राजा धृतराष्ट्र को कहे हैं हे राजा ऋषिकेष श्रीकृष्ण भगवान् को अर्जुन ने यह बचन कहे तब भक्तवत्सल गोविन्दजी ने घोड़े फेर कर अर्जुन का रथ दोनों सेना के बीच भीष्म और द्रोणाचार्य के सन्मुख खड़ा कर दिया और भीष्म द्रोणाचार्य की दाईं बाईं ओर और भी योधा थे तब श्रीकृष्ण भगवानजी

अर्जुन को बोले है अर्जुन तेरा रथ मैंने कौरवों की सेना के सन्मुख खड़ा किया है तू इनको देख तब अर्जुन ने कौरवों की सेना में बहुत योधा देखे उनमें पितामह देखे गुरू सखा देखे पुत्र देखे पौत्र देखे ससुर और मित्र देखे इन दोनों सेना में अपने ही कुटुम्बी देखकर अर्जुन को दया उपजी तब अर्जुन श्रीकृष्ण भगवानजी से बोले। अर्जुनोवाच–हे श्रीकृष्ण भगवानजी इस सेना में मैंने सब अपने ही सज्जन भाई बन्धु कुटुम्बी देखे हैं। जो साधारण में आये हैं तिनको देखकर मेरा शरीर बहुत दुख पाता है मुख सूख गया है मेरा देह कांप रहा है मेरे रोम खड़े हो गये हैं और गांडिव नाम धनुष मेरे हाथ से गिर रहा है और त्वचा जल रही है मैं खड़ा भी नहीं

हो सकता और मेरा मन भी भ्रम में है और हे केशवजी मैं अपशकुन देखता हूं और ऐसा निमित्त भी नहीं देखता हे केशव जी इस युद्ध में भाइयों को मारने में मैं अपना कल्याण भी नहीं देखता हे श्रीकृष्णजी मैं अपनी जय भी नहीं देखता और मुझको राजकी भी इच्छा नहीं और न सुख की हे गोविन्दजी राज्य किस काम का है और राज्य के भोग किस काम के हैं जिनके निमित्त राज लेना है वह कुटुम्ब के योधा लोग प्राण-धन को त्याग कर युद्ध निमित्त खड़े हैं सो यह कौन कौन हैं गुरू हैं पितामह हैं पुत्र हैं ताए हैं ससुर हैं मामे हैं साले और सम्बन्धी हैं हे मधुसूदनजी इनको मारने की मुझ को इच्छा नहीं इनपर मुझको बहुत दया आतीहै और धरतीके

धारणहारे श्रीकृष्ण भगवान्‌जीमैं इनको मारकर त्रिलोकीका राज पाऊँ तो भी न मारूंगा भूमिके राजकी तो क्या बात है हेजनार्दन जी धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारनेसे हमारा कल्याण नहीं इनकेमारने से हमकों बड़ा पाप लगेगा यद्यपि ये महापापी है तो भी नहीं मारूंगा हे प्रभुजी सभी पूजने योग्य हैं और भेंट योग्य हैं मैं इनको नहीं मारूंगा हे माधवजी सज्जन भाई बन्धु कुटुम्ब इनको मारने से हमको सुखकहां और मुक्ति कहां! यद्यपि राजके लोभ से इनकी बुद्धि भ्रष्ट भई है यह धृतराष्ट्रके पुत्र कुल नष्ट करने या मित्र केसाथ कपट करने से जो दोष उपजे है इनको नहीं समझते सो क्या इनकी नाईं मैं भी नहीं समझता जोकुलके नष्ट करनेसे पाप होता है उस पापकोमैं भली भांति जानता हूं

अबतो पाप कुलके नष्ट करने से उपजते हैं तिस पापका अर्जुन भली भांति कहते हैं हे जनार्दनजी ! जब कुल का नाश कीजे तब जो कुलके पुराने धर्म चले आये हैं तिनका भी नाश होता है जब कुलके धर्मका नाश हुआ तब सारे कुलमें अधर्म आ प्रवेश हुआ तब कुलकी स्त्रियाँ दुराचारणी हुईं तिन स्त्रियों के वर्णशंकर सन्तान उपजी वर्णशंकर कहिये पराये पुरुष की सन्तान। जब वर्णशंकर भई तब पिंड और जल पितरों को पहुंचने से रह गया तो तिनके पितर स्वर्ग में गिर पड़े इस कारण हे यादव वंशियों में श्रेष्ट श्रीकृष्ण भगवान् जी जिसने कुलको नष्ट किया तिसने कितने पाप किये सो यह सब पाप कुल के नष्ट करने हारे के सिर पर होते हैं फिर वह मनुष्य उन पापों

का फल क्या पाता है सो सुनो वह प्राणी सदा नर्क भोगता है न्याय शास्त्र में मैंने यह श्रवण किया है। अब अर्जुन और पछतावे है हाथ जोड़कर और सिर को फेरकर कहता है हा! हा! देखो भाई! मैंने कैसे पाप का उद्यम किया था राज सुख के लोभनिमित्त अपने कुलको नष्ट करने लगा था अब मैं अपने हाथ शस्त्र नहीं पकड़ूँगा और धृतराष्ट्र के पुत्रों के हाथ में शस्त्र होवेंगे और मैं उनके सम्मुख हूंगा वोह मुझको मारेंगे इसमें मेरा कल्याण होगा। सँजयोवाच—संजय धृतराष्ट्र को कहे हैं। हे राजन! अर्जुन ने यह वचन कहकर धनुषबाण हाथ से छोड़ दिया और शोक समुद्र में मग्न होकर मूर्च्छा खाकर गिर पड़े।

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे बिषाद योगो नाम प्रथमो अध्याय ॥१॥

❀ अथ प्रथम अध्याय महात्म्य ❀

एक समय कैलाश पर्वत पर महादेव और पार्वती जी की आपस में गोष्ठी हुई पार्वती ने पूछो हे महादेवजी ! आप अपने मन में किस ज्ञान से पवित्र हो किस ज्ञान के बल से आपको संसार के लोग शिवकर पूजते हैं और आपके कर्म यह दिखाई देते हैं मृगछाला ओढ़े अंगो में मसानों की विभूति लगाये गले में सर्प और मुण्डों की माला पहर रहे हो इनमें तो कोई कर्म पवित्र नहीं सो आप मुझे यह ज्ञान सुनाओ जिससे आप अन्दर से पवित्र हो तब श्री महादेवजी ने कहा! श्री महादेवउवाच—महादेवजी बोले हे पार्वती ! सुन जिस ज्ञान से मैं पवित्र हूँ और जिस ज्ञान से मुझे बाहर के कर्म व्यापते नहीं सो गीता-ज्ञान है तिसका मैं हृदय में ध्यान करता हूँ तिस ज्ञान से मुझे बाहर के कर्म व्यापते नहीं, तब पार्वती ने कहा हे भगवानजी गीता-ज्ञान ऐसा है जिसकी आप ऐसी स्तुति करते हो तिस ज्ञानके श्रवण करने से कोई कृतार्थ भी भया, है ? तब श्री महादेवजी बोले हे पार्वती इस ज्ञानको सुनकर

हुए हैं और आगे भी होवेंगे तुझको एक पुरातन कथा सुनाता हूँ तू श्रवण कर । श्रीमहादेवजी बोले कि एक समय पाताल लोक में शेषनाग की शय्या पर श्री नारायणजी नैन मूंदकर अपने आनन्द में मग्न थे और श्री लक्ष्मी चरण दबाती थीं तिस समय श्री लक्ष्मीजी ने पूछा हे श्री नारायणजी ! चौदह लोक के तुम ईश्वर हो क्या आपको भी निद्रा व्यापती है निद्रा और आलस्य उन पुरुषों को व्यापता है जो तामसी हैं । और तुम तीनों गुणों से अतीत हो तुम श्री नारायण हो और प्रभु हो वासदेव तुम नेत्र मूंद रहे हो यह मुझको बड़ा आश्चर्य है । श्री नारायणोवाच—हे लक्ष्मी ! मुझको निद्रा आलस्य नहीं व्यापता एक शब्द रूप भगवतगीता है तिस में ज्ञान है तिस ज्ञान विषे मैं आनन्द में मग्न रहता हूँ और वह कैसा ज्ञान है जिसके उपजे से यह जीव सदा आनन्द रहता है कोई क्लेश दुःख इस जीव को व्यापता नहीं जैसे चौबीस अवतार मेरे आकार रूप हैं तैसे ही यह गीता शब्द रूप अवतार है तिस गीता में यह मेरे अंग हैं पांच अध्याय मेरा मुख है पांच अध्याय मेरी भुजा हैं पांच अध्याय

मेरा हृदय और मन है सोलहवां अध्याय मेरा उदर है सतरवां अध्याय मेरी जांगें हैं अठारवां अध्याय मेरे चरण हैं सर्व गीता के श्लोक मेरी नाड़ियाँ हैं और जो गीता के अक्षर हैं सो मेरे रोम हैं ऐसी जो मेरी शब्द रूपी गीता ज्ञान है उसका अर्थ मैं हृदय में विचारता हूँ और बहुत आनन्द पाता हूँ। हे लक्ष्मी तू क्या जानती है तेरे मन में यह होगा कि मैं चरण मलती हूँ इससे श्री नारायणजी को आनन्द प्राप्त होता है हे लक्ष्मी मैं जिस आनन्द में मग्न हूँ सो गीता ज्ञान है। तब लक्ष्मी जी बोली हे श्रीनारायणजी। जो ऐसा श्री गीताजी का ज्ञान है। जिसको सुनकर कोई जीव कृतार्थ भी हुआ है, यह मुझको कहो तब श्री नारायणजी ने कहा हे लक्ष्मी! गीता ज्ञान को सुनकर बहुत जीव कृतार्थ हुए हैं सो तू श्रवण कर श्री नारायणोवाच—हे लक्ष्मी गीता के अध्याय का महात्म्य तो पीछे कहूँगा। पहले श्लोक कहता हूँ श्लोक—सर्व शास्त्रमयी गीता सर्व देव मयोहरी। सर्व तीर्थमयी गंगा सर्व धर्म मयोदया॥ १॥ मनो जानत पाप पुण्य देही जानत आपदा, गीता सर्वं कृष्ण जानत माता जाने

मुपिता ॥ द्विद्वि लोचनं सर्वाणा विद्वाना अई लोचनं । सत लोचनं धर्मानांज्ञानो अनन्त लोचनं ॥ हे लक्ष्मी ! अब पहले अध्याय का महात्म्य सुन, शिवजी पार्वती को इस तरह कहते हैं जिस तरह नारायणजी ने लक्ष्मी को सुनाया था भगवानोवाच—हे लक्ष्मी शूद्रवर्ण एक प्राणी था दो चंडालों का काम करता था और तेल लवण का व्यापार करता था उसने एक बकरी पाली। एक दिन वह बकरी चराने को गया वृक्षों के पत्र तोड़ने लगा वहाँ साँप ने उसको डस लिया तत्काल प्राण निकल गये मरकर उस प्राणी ने बहुत से नरक भोगे फिर बैल का जन्म पाया उस बैलको एक भिक्षुकने मोल लिया वह भिक्षुक उस बैल पर चढ़कर सारे दिन मांगता फिरता जो कुछ भिक्षा मांगकर लाता वह अपने कुटुम्ब के साथ मिलकर खाता वह सारी रात द्वार पर बंधा रहता उसके खाने पीने की खबर न लेता कुछ थोड़ा भूसा उसके आगे डाल छोड़ता जब दिन चढ़ता फिर बैलपर चढ़कर मांगता फिरे कई दिन गुज़रे तो वह बैल भूखका मारा गिर पड़ा। गिरने पर उसके प्राण छूटे नहीं नगर के सब लोग देखते कोई तीर्थ

का फल दे, कोई व्रत का फल दे पर बैल के प्राण छूटे नहीं, एक दिन एक गणिका आई उसने मनुष्यों से पूछा यह भीड़ कैसी है तो उन्होंने कहा इसके प्राण छूटते नहीं अनेक पुरायों फल दे रहे हैं तो बैल की मुक्ति नहीं होती तब गणिका ने कहा मैंने जो कर्म किया है तिनका फल मैंने इस बैलके निमित्त दिया इतने कहतेही बैल को मुक्ति हुई। तब उस बैलने एक ब्राह्मण के घर जन्म लिया पिताने उसका नाम सुशर्मा रखा जब वह बड़ा हुआ तो उसके पिता ने उसको विद्यार्थी किया उसको पिछले जन्मकी सुध रही थी उसनें एक दिन मन में विचार किया जिस गणिका ने मुझको बैल की योनि से छुड़ाया था तिसका दर्शन करूं विप्र चला-चल गणिका के घर गया और कहा तू तुझे पहचानती है। गणिकाने कहा मैं नहीं पहचानती तू कौन है मेरी क्या पहचान है। तू विप्र है मैं वेश्या हूँ तब विप्र ने कहा मैं वही बैल हूँ जिसको तूने अपना पुराय दिया था तब मैं बैलकी योनि से छुटा था अब मैंने विप्र के घर जन्म लिया है तू अपना वह पुराय बता कि तूने कौन पुराय किया था? गणिकाने कहा मैंने अपने जाने कोई पुराय

नहीं किया पर मेरे घरमें एक तोता है वह कुछ सवेरे पढ़ता और मैं उसके वाक्य सुनती हूँ उसी पुण्य का फल मैंने तेरे निमित्त दिया था तब उस विप्र ने तोते से पूछा कि तू सवेरे क्या पढ़ता है ? तोते ने कहा में पिछले जन्म विप्रका पुत्र था पिता ने मुझे गीता के पहले अध्याय का पाठ सिखाया था। एक दिन मैंने कहा मुझको गुरु जी ने पढ़ाया हैं तब गुरु जी ने मुझको शाप दिया कि जा रे तू सूआ होगा तब मैं सूआ भया एक दिन फंदक मुझको पकड़ ले गया एक विप्र ने मुझे मोल लिया वह विप्र अपने पुत्र को गीता का पाठ सिखलाता था तब मैंने भी वह पाठ सीख लिया एक दिन उस विप्र के घर चोर पड़े उन्हें धन तो प्राप्त न हुआ मेरा पिंजरा उठा ले गये उस चोर की यह गणिका मित्र थीं वह मुझे इसके पास दे गये सो मैं नित्य गीता के पहले अध्याय का पाठ करता हुं यह सुनती है पर इस गणिका की समझ में नहीं आता जो मैं पढ़ता हुं इसनें वह पुण्य तेरे निमित्त दिया सो श्री गीता जी के पहले अध्याय के पाठ का फल है तब उस विप्र ने कहा हे तोते तू भी विप्र है मेरे आशीर्वाद से तेरा कल्याणहो

हैं इनके मारे से मेरा कल्याण कहां है इन्द्रियों के भोगों के निमित्त इनका घात करिये तो इनको मार राज के भोग भोगिये सो भोग इनके रुधिर के साफ लिपटे हुए भोगिये और जो यह बात निश्चय कर नहीं जानी जाती जो सर्वथा हमारी ही जीत हो पर बात मैं निश्चय जानता हूं कि हमारे सन्मुख जो यह धृतराष्ट्र के पुत्र खड़े हैं सो इनको मारने से हमारा जीना भला नहीं और आपने जो कहा नीच बुद्धि को मत प्राप्त हो मैं नीच बुद्धि के पाप को मानता नहीं और मैं मूर्ख हो गया हूं जो धर्म अधर्म को नहीं समझता जो धर्म मुझको किस करके है, और कैसे है। हे प्रभु जी ! मैं शासन योग्य हूं मनसा वाचा कर्मणा से तुम्हारी शरण आया

हूं। जिससे मेरा कल्याण हो सो बात निश्चय कर मुझको कृपा कर कहो। प्रभु जी ! इस शोक से मेरी इन्द्रियाँ सूख गई है सो बात मैं कोई नहीं देखता जिससे मेरा शोक दूर हो हे प्रभु जी ! जो शत्रुओं को मारकर निष्कंटक सारी भूमि का राज पाऊं और देव लोक जो स्वर्ग है उसकी राज्य सामग्री पाऊं तो भी इनको मारकर मेरा शोक नहीं जायगा भूमि के राज्य की तो कितनी बात है संजयोवाच-हे राजन् यह बात ऋषिकेश केशव जी अर्जुन कहता है हे गोविन्द जी मैं इन के साथ युद्ध किसी प्रकार नहीं करूंगा, यह कहकर अर्जुन चुप कर गया। संजय धृतराष्ट्र को कहते हैं, हे राजा जी ऐसे दुःख में प्राप्त अर्जुन को कृष्ण भगवान जी हंस कर यह बात

कहते हैं। श्री भगवानोवाच—हे अर्जुन ! जो विवेकी पुरुष हैं वह किसी वस्तु की चिन्ता नहीं करते। जिनके मारने की चिन्ता तूने करी है सो तेरे कहे मारे नहीं जाते। क्या यह अभी उपजे हैं ? नहीं पीछे भी थे और अब भी हैं। और आगे भी होवेंगे। यह बोलने हारा आत्मा है, सो अविनाशी है और देह की जैसी तीन अवस्था हैं बाल, यौवन, वृद्ध तैसी चौथी अवस्था देह की मरण है, यह देह के धर्म हैं सो विवेकी पुरुष आत्मा को अविनाशी जानते हैं और देह का मरणा ही धर्म है। यह जानकर बुद्धिमान किसी का शोक नहीं करते। हे कुन्ति नन्दन अर्जुन ! तुझको इन्द्रियों का ज्ञान प्राप्त भया सो यह ज्ञान सुख दुःख और शीत उष्ण का दाता है। यह सुख दुःख प्राप्त भी होता है और मिट

भी जाता है ! अन्तवंत है ! हे अर्जुन तू इनको संहार । हे श्रेष्ठ अर्जुन जिनकी इन्द्रियों के सुख और दुःख अपनी निश्चलता से चलायमान न कर सकें तिन्हीं पुरुषों ने अमृतपान किया है सोई पुरुष अमर हुए हैं। हे अर्जुन ! यह जो समस्त देह में आत्मा व्यापा है तिसको तू अविनाशी जान ! यह किसी के कहे मारा नहीं जाता। यह अन्तवंत है शरीर उपजते भी हैं और विनाश भी होते हैं और आत्मा नित्य है। अमर है फिर कैसा निराहार है कुछ खाता पीता नहीं और आत्मा की मर्यादा भी नहीं कि कितनी हैं इस कारण हे अर्जुन युद्ध करके कोई कहे अमुक को मैंने मारा है, सो वह दोनों कुछ नहीं समझते नाहीं मरा और न किसी ने मारा है आत्मा कैसा है।

कभी जन्मता नहीं और कभी मरता भी नहीं है और यह भी नहीं जो कभी होता है कभी नहीं होता है और यह भी नहीं आत्मा अजर है जन्म मरण से रहित है नित्य अविनाशी है शाश्वत है और पुरातन है और किसी के कहे मारा नहीं जाता शरीर मरते जन्मते हैं जिनका मरना ही धर्म है परन्तु मरना आत्मा का धर्म नहीं। हे अर्जुन जिन्होंने ऐसा अविनाशी आत्मा नहीं पहचाना सो पुरुष कहे हैं कि कोई हमने मारा या अमुक ने हमें मारा देह और आत्मा की संयोग अर्थात् इकट्ठा होना किस भांति है, सो आत्मा सुन जैसा पुराना वस्त्र उतारा और नया पहन लिया इसी भांति आत्मा पुरातन देह छोड़कर नया देह लेता है फिर कैसा है शस्त्रो से काटा नहीं

जाता अग्नि से जलाया नहीं जाता और जल में डूबता नहीं और पवन से सूखता नहीं आत्मा छेदने काटने से रहित हैं जलने से रहित है, डूबने से रहित है, सूखने से रहित है अविनाशी है सर्वव्यापी है सर्व देहों में भरपूर है इसी से निश्चल कहा जाता है सनातन पुरातन है, फिर कैसा है आत्मा अव्यय है। किसी ने देखा भी नहीं अचिन्त है चिन्तव्य नहीं जाता और अकर्त्ता है कुछ काम काज भी नहीं करता हे अर्जुन ! जिन्होंने ऐसा आत्मा पहचाना है सो किसकी चिन्ता करें आत्मा तो ऐसा है जैसा मैंने तुझे कहा है। हे महाबाहो ! जो तू आत्मा को ऐसा न जाने तो भी चिन्ता किसी बात की नहीं करनी चाहिये जो जन्मा है सो निश्चय कर मरेगा जो मरे हैं तिनका निश्चय कर

जन्म है। इसी भांति समझ कर चिन्ता नहीं करनी चाहिये अब और सुन। इन सभी भूत प्राणियां शरीर धारियों का आदि अन्त जाना नहीं जाता कि कहां से आये कहां जायेगा बीच ही से दीखने लगे हैं जब शरीरों को छोड़ते हैं तब नहीं जानते कि गये जिनका आदि अन्त न जाए कि कहां से, कहां से, कहां को गये उनकी चिन्ता क्या करे इस भांति भी चिन्ता करनी उचित नहीं है अब और सुन। इस बोलना हारे आत्मा को देखा चाहे सो आश्चर्य होकर देखता है और सुनता भी आश्चर्य से है आश्चर्य क्या है जिसका कुछ निर्णय न किया जाय कि यह क्या है जिसके देहमें रहते ही धर्म न जानिये कि क्या है इस भांति चिन्ता करनी आई और एक

बात इस आत्मा को निश्चय कर जानिये, यह अविनाशी है इस कारण से अर्जुन ! तू किसी भूत प्राणी की चिन्ता मत कर ! तू क्षत्रिय है युद्ध करना तेरा धर्म है तू अपने धर्म से मत गिर ऐसे युद्ध विषय कल्याण क्षत्रियों को दुर्लभ है अपनी इच्छा से यह सभी योधा आए हैं स्वर्ग के द्वार इनके लिये खुल पड़े हैं। हे अर्जुन ! इस युद्ध के मार्ग से सुख से ही स्वर्ग को जा प्राप्त होवेंगे और जो तू यह धर्म का सँग्राम ना करेगा तो तेरा धर्म भी जाता रहेगा और कीर्ति भी जायेगी अपने धर्म और कीर्ति को छोड़कर पाप को प्राप्त होवेगा जो लोग तेरी कीर्ति करते हैं सो ही तेरी निन्दा करेंगे कि अर्जुन कुछ नहीं बलहीन है लोगों में जिसकी निन्दा हो उसके जीवन से मरण भला है जो

योधे तेरे से डरते हैं तुझको महारथी योधा कर मानते हैं सो ही योधे कहेंगे अर्जुन कुछ नहीं बलहीन है तुझे बुरे वचन कहेंगे तेरे पराक्रम की निन्दा करेंगे। इसके उपरान्त तुझे बड़ा दुःख होगा। जो तू युद्ध में शरीर छोड़ेगा तो स्वर्ग में जाय प्राप्त होवेगा। दोहा—रण में मरें तो स्वर्ग हो विजय होय महाराज। उर में करो विचार यह युद्ध हेतु धनु साज। जो जीतेगा तो पृथ्वी के राज का सुख प्राप्त होगा! इस लिये अर्जुन! तू उठ खड़ा हो युद्ध का निश्चय कर सुख और दुःख को एक समान जान कर युद्ध कर तो तुझे पाप नहीं लगेगा हे अर्जुन! मैंने तुझको यह सांख्य शास्त्र का मत सुनाया है अब बुद्धि योग सो कैसा बुद्धियोग है जिसके सुनने समझने से जन्म मरण

के बन्धन को काट डारेगा मुक्ति पावेगा। अब प्रथम तू मेरी बुद्धि सुन जो मैं अपने भक्तों के साथ कैसा हूं। जो मेरे भक्त मेरी सेवा पूजा भक्ति स्मरण भूल कर भी करे है आगे का पीछे और पीछे का आगे तो तिसका पापा कुछ नहीं मैं क्या कर मानूं हूं जो मेरा भक्त मेरे प्रेम में मग्न हुआ है इसको सुर्त नहीं है, जिसकी साखी सुन जैसे राम अवतार में भीलनी की गति प्रेम के साथ जूठे बेर भोजन किये हैं हे अर्जुन मेरी गति देखने में थोड़ी है क्यों थोड़ी है कि एक तुलसी दल अथवा पुष्पमाला मुझे समर्पण करे अथवा एक बार नमस्कार करे अथवा एक बार मेरा नाम लेवे यह देखने को तो थोड़ा है पर इसका फल बड़ा है। क्या फल है जन्म मरण के दुःख को

काट कर मेरे अविनाशी पद में लय होता है यह जो भक्तों के साथ मेरी प्रीति है सो कही है और भक्ति का फल भी कहा है अब जैसी मेरे साथ मेरे भक्तोंकी बुद्धि है सो सुन मेरे भक्तों की केवल एक मेरे चरणकमलों की सेवा साथ प्रीति है मुझ बिना किसी और दूसरे को नहीं मानते और मेरे नाम बिना कुछ मुख से और कहते भी नहीं और ना सुनते ही हैं केवल दृढ़ निश्चय है और जिनका निश्चय मेरे साथ नहीं तिनकी बात सुन उनकी मति अनेक ओर भरमती फिरती है जिस ओर किसी ने लगाई उस ओर लगी और वह कैसे हैं जिनका निश्चय मेरे साथ नहीं मीठी २ वाणीसे श्लोक पढ़ २ लोगों को सुनाते हैं और देवताओं की भक्ति का उपदेश करते हैं वह अन्धे मूर्ख अपने आप को

पँडित कहलाते हैं ! हे अर्जुन वेद के विवाद से आप भी मोहे हुए हैं और लोगों को भी मोहित करते हैं। फिर कैसे हैं इन्द्रियों के भोगों में जिनकी कामना है उन्होंने स्वर्ग को ही परम पद समझ रखा है वह ऐसे कर्म करते हैं जिनके किये से बारम्बार संसार में जन्म मरण होवे और जिनके करने से कष्ट बहुत होवे और जिस कर्म का तुच्छ फल होवे स्वर्ग गये फिर गिर पड़े ऐसे जो बुद्धि हीन हैं जिनकी कामना इन्द्रियो के भोगों में है और संसार में अपनी प्रभुता है इन बातों से बुद्धि अन्ध भई है उनकी बुद्धि का निश्चय मेरे में लगता नहीं और निश्चय के लगे बिना परम सुख जो है समाधि परम कल्याण सो कभी नहीं। अब अर्जुन वेद का वृतान्त सुन। वेद की बुद्धि भी तीनों

गुणों में है। तू इन तीनों गुणों से अतीत है कैसा है जहां न शीत हो न उष्ण हो न हो जन्म मरण ऐसा जो आत्मा सत्य स्वरूप और नित्य है तू इसके साथ जुड़। आत्मा सुख और इन्द्रियों के भोगों के सुख में बड़ा भेद है। तिनका दृष्टांत सुन जैसे जलका पात्र, कुआं तालाब, टोभा, नदी इनके विषे एक२ ही कार्य होय जो कुऐं पर जाकर यत्नसे जल निकाले तब पानकी जेपर भली भांति कुऐं में स्नान नहीं होता है वस्त्र भी धोये नहीं जाते और जो तालाब टोभे नदी जावे तहां पानी पीने का जल नहीं स्नान करते वस्त्र धोते हैं और जब महाप्रलय में जहां सातों ही समुद्र एक हो जाते हैं ऐसे अनन्त जलमें भलीभाँति स्नान भी होय जल पान भी होय वस्त्र भी धोय इसी भांति आत्मा ब्रह्मके साथ जुड़कर

अनन्त सुख पाता है इन सुख को मेरे उपासक ब्रह्मा नारद तपस्वी सब जानते हैं तिस कारण हे अर्जुन ऐसा जो आत्मा का सुख है तिस साथ जुड़ तेरा जो क्षत्रिय धर्म है सो कर फल कुछ न मांग। हार जीत एक समान जानकर युद्ध कर । हर्ष शोक से रहित हो इसका नाम समता योग है। हे अर्जुन! ऐसे युद्ध योग के साथ जुड़कर पाप पुण्य दोनों को काट डाल और बुद्धि योग कर। आत्मा साथ जुड़ इसका नाम कल्याण योग है। ऐसे जो विवेकी पुरुष हैं सो फल किसी कर्म का नहीं वांछते मेरे साथ जुड़ते हैं। फल वांछते हैं सो नीच मति हैं। हे अर्जुन जब तू मेरे साथ बुद्धिको निश्चल करेगा तब जन्म मरण के बन्धन काट कर मेरे अविनाशी पद को जा प्राप्त होगा।

हे अर्जुन! जब मोह के जाल को तेरी बुद्धि तोड़ेगी तब जितने शास्त्र सुने हैं उनसे भी विरक्त होगा। जब तेरी बुद्धि निर्मल होगी तब तू समाधि योग के सुख को जानेगा। श्रीकृष्ण भगवान के वचन सुनकर अर्जुन प्रश्न करे हैं॥ अर्जुनोवाच हे केशवजी जिसकी निश्चल बुद्धि है तिसके लक्षण कृपा कर कहो तिसकी बोली कैसी है समाधि कैसी है लोगोंके साथ बात किस भांति करता है और वही चलता और बैठता किस भांति है। मैं कैसे समझूं कि यह निश्चल बुद्धि है इतना सुनकर कृष्ण भगवान् जी कहते हैं॥ श्री भगवानोवाच। हे अर्जुन! जिसकी कामना किसी बात करने पर नहीं उठती अपनी आत्मा को पाकर संतुष्ट है तिसको तू निश्चल बुद्धि जान फिर कैसा है

जिसकी देह को यदि दुख लगे तो चिन्ता न करे और सुख की इच्छा न करे किसी से जिसका मोह नहीं और किसी का भय नहीं किसी साथ बैर नहीं और किसी से क्रोध नहीं होता तिसकी बुद्धि निश्चल जान फिर कैसा है जिसको किसी से प्रीति नहीं जिसे भली वस्तु पाकर हर्ष नहीं और बुरी वस्तु पाकर शोक नहीं तिसकी बुद्धि निश्चल जान। फिर कैसा है जिसे कूर्म अर्थात् कच्छू अपने हाथ पांव मुख सभी इन्द्रियां अपनी खोपड़ी में चढ़ा लेता है तैसे ही जिसने सभी इन्द्रियां विषयों से खैंच के बाँध रक्खी हैं जिसको तू निश्चल बुद्धि जान। हे अर्जुन! यद्यपि विवेक पुरुष इन्द्रियों को जीतने का यत्न करता है तो भी इन्द्रियाँ बलवान हैं मन को ठौर से चलाय देती हैं। हे

अर्जुन तिन सब इन्द्रियों को तू वस में कर किस भांति वस कर सो सुन मनका निश्चल चेता मेरे में रख। मन ही से इन्द्रियां सूरजीत हैं सोई मेरे में निश्चल रख तब इन्द्रियां आपही जीती जावेंगी। जिसके वश इन्द्रियां हैं तिसकी बुद्धी निश्चल जानो और जो मेरे नाम मेरे ध्यान बिना कुछ चितवाना बात करता है इससे मनुष्य का किस भांति कार्य बिगड़े हैं सो सुन! जो मनुष्य विषयों की बात करे तिसका संग न करे अथवा अपने मन में विषयों का ध्यान करने से मन में काम आदि कामना उपजती है काम से क्रोध उपजता है क्रोध से लोभ लोभ से मोह मोहसे चैतन्य कानाश होता है। चैतन्य के नाश से बुद्धि का नाश हुआ बुद्धि नाश होने से इसका नाश हो जाता है। जब

बुद्धि नष्ट हुई तब जैसे और पशु योनि हैं तैसे यह पशु हुआ। इस कारण से मेरे भक्त संसारी मनुष्यों का संग कभी नहीं करते और नाम के बिना और बात नहीं करते। नाम की चितवनी बिना और कुछ संकल्प नहीं करते यह मेरे भक्तों को मेरी आज्ञा है अब अर्जुन मेरे भक्त भोजन छादन का अंगीकार कैसे करें सो सुन जैसे मेरी आज्ञा है सो आ मिला तैसे ही भोग लिया शोक से रहित और जिनके मनका निश्चल चेता मेरे में होता है तिन पर कृपा करता हूं मेरी कृपासे तिनके तन और मन के छोटे बड़े जो दुख हैं उनका नाश होता है। जिनका मन अति प्रसन्न होता है तिनकी बुद्धि का निश्चल चेता मेरे में होता है अब जिनकी नास्तिक बुद्धि है तिनकी बात सुन ! हे

अर्जुन नास्तिक बुद्धि किस को कहते जो ऐसा कहते हैं कि परमेश्वर कहां हैं ? किसने देखा हैं तिनकी श्रद्धा मेरे में नहीं लगती मेरे में श्रद्धा लगे बिना शान्ति नहीं और शांतिके बिना कोई सुख नहीं नास्तिक बुद्धि सदा दुखी रहते हैं। हे अर्जुन जो इन्द्री विषयों की ओर चले तिसके पीछे मन को न जाने देवे उसकी बुद्धि कैसी है सो सुन जैसे नौका नदी के परले किनारे चलती है और पवन झखड़ आता है तो नौका को इस तट पर नहीं लगने देता जिधर किधर जा लगती है इसी भांति इन्द्रियों के पीछे मन को न जाने दे इसलिए हे अर्जुन ! प्रथम तू इन्द्रियों को वशकर जिन पुरुषोंने इन्द्रियों को अपने अर्थों से वर्ज रक्खा है अपने वश में करी हैं तिनकी बुद्धि तैसे ही मेरा

भक्त पूर्ण और निश्चल चाहिए तू निश्चय जान हे अर्जुन!
अब और सुन मेरे स्मरण भजन की बातों का स्वाद जो है
तिसकी संसारी मनुष्यों को सुर्त नहीं तिनके वास्ते मेरा भजन
रात है मेरी ओर से सोरहे हैं और सँसारके विषयों में सावधान हैं
तनको यह दिन होते हैं जिसमें मनुष्य जागते हैं और संयमी
जो मेरे भक्त हैं सो उस ओर से सो रहे हैं तिनके वास्ते संसार
की बात रात्रि है और जो मेरे भक्त हैं, मेरे भजन में जागते
हैं सावधान हैं मेरा जो पूर्ण भक्त है उसके लक्षण सुन जैसे
समुद्र अपने जल से पूर्ण और निश्चल है वह कैसा है जिसकी
कामना मेरे भजन बिना किस बात को नहीं चाहती ऐसे जो
अप्रिय और अवांछी निरहंकार ममता से रहित है वह

शांति पद में लीन है और शांति उसमें लीन है हे अर्जुन यह मैंने मुझको ब्रह्म स्थिति कही है जो ब्रह्म में है तिसको यह स्थिति स्वभाव प्राप्त हुआ है सो फिर माया के मोह से कभी नहीं मोहा जाता क्योंकि वह माया के हार निर्वाण ब्रह्म पद में जा प्राप्त होता है ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषद् ब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे सांख्ययोगोनाम द्वितीयो ध्याय २॥

दूसरा अध्याय

श्री नारायणोवाच—नारायण जी कहते है हे लक्ष्मी तू श्रवण कर दक्षिण देश में एक पूर्ण नाम नगर था वहां एक सुशर्मा बड़ा धनपात्र रहता था ! वह साधु सेवा करता था एक दिन साधु को कहने लगा हे सन्त जी मुझको नारायण जी के जानने का ज्ञान उपदेश करो जिससे मेरा कल्याण होवे मैं

मोक्ष पद पाऊं ऐसे सन्त सेवा करते बहुत दिन बीते वहां एक बाल नाम ब्रह्मचारी आया उसकी सेवा बहुत करी और विनय करी हे सन्तजी मुझे कृपा कर श्रीनारायण जी के पाने का ज्ञान उपदेश करो जिससे मेरे जीवन का कल्याण और मुक्ति होवे तब बाल ब्रह्मचारी ने कहा मैं तुझे गीताजी के दूसरे अध्याय का पाठ सुनाता हूँ उसके सुनने से तेरा कल्याण होगा। तब देव सुशर्मा ने कहा श्री गीता जी के अध्याय के सुनने से कोई आगे भी मुक्त हुआ है तब बाल ब्रह्मचारी ने कहा मैं तुझे पुरातन कथा सुनाता हूँ तू श्रवण कर। एक अयाली बन बकरियां चराया करता था और वहां मैं भजन किया करता था। एक दिन रात को अयाली बकरियां लेकर घर को चला मार्ग में एक सिंह बैठा था एक बकरी सबसे आगे चली जाती देख कर सिंह भाग गया। तब वह अयाली यह अचरज देखकर बड़ा चकित हुआ और मैं भी वहाँ आ खड़ा हुआ चरवाहे ने ये देखकर कहा मैंने यह आश्चर्य देखा कि बकरी को देखकर सिंह डर के भाग गया है तुम सन्त त्रिकालज्ञ हो यह वृतांत

मुझे कहो कि क्या चरित्र हुआ है। ब्रह्मचारी ने कहा हे अयाली मैं मुझे एक पिछली वार्ता सुनाता हूँ। यह बकरी पिछली जन्म की डैन हो गई जिस सुन्दर लड़के को देखे उनको खा लेवे और सिह पिछले जन्म फन्दक था वह पन्ची पकड़ने बाहर गया और डैन भी बन को गई थी वहाँ डैन ने उस फन्दक को खा लिया अब वही फन्दक सिंह गया और वहां डैन यह बकरी भई सिंह को पिछले जन्म की खबर है इस निमित्त बकरी को देख कर सिह ने जाना कि अब भी मुझे खाने आई है तब अयाली ने कहा पिछले जन्म कौन था तब ब्रह्मचारी ने कहा तू पिछले जन्म चंडाल था तब अयाली ने कहा हे ब्रह्मचारी जो कोई ऐसा उपाय भी है जिससे हम तीनों ही इस अधम देह से छूटें तब ब्रह्मचारी ने कहा हम तुम्हारे तीनों का उद्धार करते हैं एक वार्ता मेरे से सुनो पर्वत की कन्द्रा में एक शिला थी तिस पर श्री गीता जी का दूसरा अध्याय लिखा हुआ था मैंने उन अक्षरों को उस शिला पर देखा था अब मैं तुम्हारे को मन बचन और कर्म करके सुनाता हूँ तुम श्रवण करो तब ब्रह्मचारी ने

गीता जी के अक्षर सुनाये तब तत्काल ही आकाश से विमान आये उन स
को विमान पर चढ़ाकर बैकुण्ठ लोक को ले गये अधम देह से छूटकर देव दे
पाई और देवसुशर्मा भी गीता ज्ञान को सुनकर मुक्त हुआ देव देही पाय
बैकुण्ठ को गया तब श्रीनारायणजी ने कहा हे लक्ष्मी जी मनुष्य श्री गीत
के ज्ञान को पढ़ें सुने तिसका फल क्या वर्णन करिये श्री गीताजी के
अथवा दर्शन के करने से जीव मुक्ति को प्राप्त होते हैं और पाठ का
तो और भी अधिक है ॥

इति श्रीपद्म पुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्तरा खण्डे गीता महात्म नाम
द्वितीयो अध्याय सम्पूर्णम ॥२॥



* अथ तीसरा अध्याय *

कर्म—योग

इस पर अर्जुन ने श्री कृष्ण भगवानजी से प्रश्न किया—"हे जनार्दन यदि आप कर्मों की अपेक्षा ज्ञानको श्रेष्ट मानते हैं तब मुझे भयंकर कर्म की ओर क्यों प्रेरित करते हैं? इन मिला-जुली बातों से मेरी बुद्धि को क्यों भ्रम में डालते हैं। एक निश्चित वह बात बतायें जिससे मेरा कल्याण हो।" अर्जुन के वचन सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले। "मैं तुम्हें पहले बता आया हूं कि सिद्धि के दो मार्ग हैं। ज्ञानियों के लिये ज्ञान योग और कर्मियों के लिये निष्काम कर्म योग। परन्तु किसी मार्ग पर चलो, कर्म तो करना ही होगा; कर्मों को न करने

से ही निष्कर्मता अथवा भगवान् साक्षात्कार तो मिल नहीं सकता। कर्मों को सर्वथा कोई छोड़ भी नहीं सकता। प्रकृति अधीन हो उसे सोना-उठना आदि कर्म करने ही पड़ते हैं। मूढ़ बुद्धि हठ से इन्द्रियों को रोक कर मन से उनके भोगों ध्यान करता है वह दम्भी कहाता है। हां, जो पुरुष इन्द्रियों लगाम मन से थामे हुए भोगों में लिप्त हुए बिना कर्मेन्द्रियों कर्म करता है वह श्रेष्ठ है। इस लिये कर्म तो कर ही, कर्म करने से कर्म करना सदा अच्छा है। बिना कर्म किये तो जीव निर्वाह भी तो नहीं हो पायेगा। हे अर्जुन! जो कर्म यज्ञ अर्थात् विष्णु के निमित्त नहीं किये जाते वे ही मनुष्य को इस आ गमन के चक्कर में बांधते हैं। इस लिये निष्काम होकर

करता जा। ब्रह्मा ने प्रजा की रचना के साथ यज्ञ भी बनाया
था और आज्ञा दी थी कि यज्ञ द्वारा ही तुम लोग बढ़ोगे, यह
यज्ञ तुम्हारा कामधेनु रहेगा। तुम लोग यज्ञ द्वारा देवताओं को
सन्तुष्ट करो वे तुम्हें उन्नत करेंगे। इस प्रकार परस्पर उन्नति
करते हुए परम कल्याण प्राप्त होगा। यज्ञ से प्रसन्न किये
देवता तुम्हें इच्छित भोग पहुंचायें। इन भोगों को जो इन्हें
दिये बिना भोगता है, वह निश्चय चोर ही है। यज्ञ से बचे
भोगों को भोगने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से मुक्त रहते हैं
और जो केवल अपने लिये ही भोग जमा करते हैं, वे निश्चय
पाप ही पाप भोगते हैं। यह सृष्टि चक्र ऐसा है कि सब प्राणी
से पैदा होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वर्षा से और वृष्टि

की रचना यज्ञ से होती है और यज्ञ का अर्थ है सर्वोपकारी कर्म यह कर्म ब्रह्म अर्थात वेद (ज्ञान) से और ज्ञान अविनाशी परमात्मा से मिलता है । इस प्रकार सर्वव्यापी परमेश्वर की प्रतिष्ठा सदा यज्ञ में है। जो पुरुष इस सृष्टि चक्र के अनुसार नहीं वर्तता वह पापी व्यर्थ ही जीता है। परन्तु जो पुरुष आत्म-तत्त्व में लीन और उससे सन्तुष्ट रहता है, उसके लिये कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है। ऐसे पुरुष को करने या न करने से किसी में स्वार्थ नहीं होता, किसी प्राणी से उसका कोई स्वार्थ संबंध नहीं होता। इसलिये हे अर्जुन तू अनासक्त रहकर कर्म करता जा, इस प्रकार कर्म करने वाला मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करता है। जनक आदि सन्तों ने ऐसे ही कर्म-योग से सिद्धि पाई थी।

फिर लोक हितार्थ भी कर्म करने ही चाहिये, कारण कि भले आदमी जैसे करते और बर्तते हैं, दूसरे पुरुष वैसे ही उनका अनुकरण करते हैं । हे अर्जुन ! मुझे ही देख। तीनों लोकों में यद्यपि मेरा कोई कर्त्तव्य शेष नहीं, मुझे कुछ अप्राप्त ही है तो भी मैं सन्ध्या, तर्पण पितृ सेवा आदि सत्कर्म तो करता ही हूं । यदि मैं आलसी हो सत्कर्म भी त्याग बैठूं तब मुझको देखकर सभी लोग सत्कर्मों को छोड़ बैठेंगे। सब लोक नष्ट हो जायेंगे, प्रजा में वर्ण शंकर हो जायगा और मैं सारी प्रजा के कुलविनाश का कर्त्ता कहलाऊंगा । अतएव हे अर्जुन ! अज्ञानी पुरुष आसक्ति से कर्म करते हैं वैसे ही ज्ञानी पुरुष को लोगों की शिक्षा के लिये आसक्ति रहित रह कर्म करते ही जाना

चाहिये। कर्म करना छोड़ कर अज्ञानियों में कर्मों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न न होने दे, अपितु स्वयं समता बुद्धि रखता हुआ उनसे भी वैसे ही कर्म करावे। हे अर्जुन! वस्तुतः तो कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा होते हैं, और अहंकार से मोहित अन्तःकरण वाला पुरुष 'मैं करता हूं' ऐसा समझता है। परन्तु जो ज्ञानी पुरुष गुणविभाग और कर्म विभाग के तत्व को जानता है, आत्मा को इन दोनों से निर्लेप अनुभव करता है वह जानता है कि गुण गुणों में वर्तते हैं, इसलिये वह कर्मों से सुखी अथवा दुखी नहीं होता। प्रकृति के गुणों से भ्रान्त बुद्धि पुरुष प्रकृति के गुण और कर्मों में लिप्त होते हैं। इन थोड़ा समझे हुए अल्प बुद्धियों को अच्छी प्रकार जानने वाला ज्ञानी पुरुष चञ्चल

डाले । इसलिए हे अर्जुन ! आत्माभिमुख होकर मुझ
भगवान्) को सब कर्मों को अर्पित करके, आशा और ममता
ा त्याग कर निश्चिन्त हो युद्ध कर । जो मनुष्य श्रद्धा से ननु-
चयकये बिना मेरी यह सलाह मानते हैं वे सब कर्म बन्धन
छूट जाते हैं, और जो इसमें मीनमेख निकालते रह जाते हैं,
के अनुसार वर्तते नहीं, वे भ्रान्त बुद्धि, अविचारी कल्याण
र्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं । ज्ञानी पुरुष भी अपने स्वभाव के
नुकूल कर्म करता है,सभी स्वभाव के अधीन हैं, हठ से कोई
भ नहीं होता । मनुष्य को चाहिये सभी इन्द्रियों के भोगों में
राग द्वेष की भावना भरी रहती है, उसके अधीन न हो,
ल्याण के मार्ग में बस ये दोनों ही लुटेरे हैं । गुण रहित भी

अपने स्वभाव के अनुसार किया हुआ कर्म अच्छी प्रकार साधे हुए दूसरे के स्वभावानुसारी धर्म से अधिक अच्छा है। के साधन में जीवन खपा देना कल्याणकारक है, दूसरे का भय कारक होता है। यह सुनकर अर्जुन ने पूछा—"हे यदुपति यह तो बताइये कि न चाहते हुए भी मानो डण्डे के जोर पुरुष से पाप कौन कराता है?" भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—र तृष्णा से उत्पन्न काम ही क्रोध है जो मनुष्य को पाप की ओर ले जाता है। इसकी भूख बहुत बड़ी है, यह बड़ा पापी है इस को तू अपना वैरी जान। जैसे धुएँ से अग्नि और धूल से तर्पण और जेर से गर्भस्थ शिशु ढक जाता है वैसे ही ज्ञानियों का सदा वैरी, सदा भूखे, अग्नि सरीखे, काम से ज्ञानी का ज्ञान

ढका रहता है। यह काम मनुष्य की इन्द्रियों, मन और बुद्धि में रहता है और इन द्वारा ही मनष्य को मूढ बताता है। इसलिए हे अर्जुन! तू पहले इन्द्रियों को अपने वश में कर ज्ञान-विज्ञान को नष्ट करने वाले इस पापी काम का विध्वंश कर। जो तू समझे कि यह मेरी शक्ति से बाहर है, सो बात नहीं। कारण कि, इन्द्रियों से सूक्ष्म मन, मन से सूक्ष्म बुद्धि और बुद्धि से भी सूक्ष्म आत्मा है। इस प्रकार आत्मा सब से सूक्ष्म और अधिक बलवान् है उस द्वारा दुर्जय काम शत्रु को मार।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे कर्मयोगो नाम तृतीयो अध्याय ॥३॥

* तीसरे अध्याय का महात्म्य *

१—कर्म के फल और लगाव का ध्यान न कर मेरी आज्ञानुसार कर्म करने का नाम निष्काम कर्म है। इस प्रकार निष्काम कर्म करने वाले पुरुष के कर्मों का न तो बीज नाश होता है और न उनका फल ही उसे भोगना पड़ता है। इसलिए निष्काम कर्म रूपी धर्म का थोड़ासा भी साधन जन्म-मरण के भारी भय से मनुष्य को बचाता है। हे अर्जुन इस मार्ग पर चलने वाले मनुष्य की बुद्धि निश्चयात्मक हो जाती है—वह दृढ़ निश्चय से मेरे आदेश का पालन करता है। और जो अज्ञानी सकाम कर्म करते हैं उनकी मति अनेक ओर भ्रमती फिरती है। वे बुद्धि के ओछे सकामी पुरुष वेदका नाम लेकर ज्ञान बघारते स्वर्ग को ही सब कुछ मानते, इससे बढ़कर और कुछ नहीं ऐसा बखानते है। इसी लिए वे भोग और ऐश्वर्य के लिए लुभाने वाली बहुत सी क्रियाओं और कर्मों का बड़े विस्तार से और खूब सजाकर वर्णन करते हैं

। वाणी से मोहित और भोग एवं ऐश्वर्य से अन्ध बुद्धि वाले मनुष्य कभी पर-बुद्धि नहीं हो पाते । हे अर्जुन वेद तो तीनों गुणों से उत्पन्न संसार का काश करने वाले हैं—तू आत्मा तो सँसार से ऊपर, असंसारी तीनों गुणोंसे तीत है। आत्मा, शीत-उष्ण, सुख-दुख से तो रहित सत्य स्वरूप और त्य है। तू अप्राप्त वस्तु को जुटाने और प्राप्त की रक्षा की चिन्ता से हित आत्मसुख में लीन हो।

२—इससे हे अर्जुन ! केवल कर्म करना यही मनुष्य का अधिकार है, फल मनुष्य का अधिकार नहीं है। तू कर्मों के फल की वासना भी मत रख र अकर्मण्य, आलसी बिना काम के रहने की इच्छा भी मत कर। आसक्ति छोड़कर, हार-जीत, फल-अफल की परवाह किए बिना अपना काम किये । इसीका नाम समता योग है। फल की चाहना से किया हुआ कर्म इससे नष्ट है। जो फल चाहते हैं वे अविवेकी अत्यन्त दयनीय हैं। जो पाप-

पुण्य दोनों के संग से दूर रहकर समता बुद्धि की चेष्टा करना ही से छूटने का उपाय है। बुद्धि योग युक्त पुरुष कर्म से उत्पन्न होने वाले की इच्छा को छोड़कर अविनाशी पद को प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन ! तू फल के मोह की इस दलदल को पार कर लेगा तब तुझे सुनने यां हुए की आवश्यकता न रहेगी। सुने हुए नाना सिद्धान्तों से विचलित हु तेरी बुद्धि जब समता योग से स्थिर हो जायगी तभी तो सच्चे योग प्राप्त होगा ।

३—संसारी भूत-प्राणियों के लिए जो रात्रि है उस नित्य शुद्ध पर में भगवत को प्राप्त हुआ योगी पुरुष जागता है और जिस नाशवान् भँगुर सांसारिक सुखमें संसारी प्राणी दिन मानते हैं, तत्व को जानने मुनि के लिये वह संसारी-स्थिति रात्रि है, उस ओर से वे सोते हैं जैसे ओर से भरे-पूरे समुद्र में नाना नदिया उसकी शान्ति और स्थिरता को भं

किये बिना ही समा जाती हैं, वैसे ही जो स्थिर-बुद्धि वाला पुरुष भोगों को किसी प्रकार के विकार के बिना भोग सकता है वही पुरुष परम शान्ति को प्राप्त करता है, भोगों को चाहने वाला नहीं।

इति श्रीपद्म पुराणे सती ईश्वर संवादे उत्तराखण्डे गीता महात्म्य नाम तृतीय अध्याय सम्पूर्णम् ॥३॥

* अथ चौथा अध्याय *

कर्म सन्यास योग

इसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले—"हे अर्जुन! सृष्टि आदि में यह अविनाशी कर्म योग मैंने विवस्वान को बताया। विवस्वान् सूर्य ने अपने पुत्र मनु को बतलाया और मनु इक्ष्वाकु को। इस प्रकार परम्परा से इसे राजर्षियों ने जाना।

परन्तु अब इस पुरातन योग को लोग भूल चुके हैं। यही पुरातन रहस्य मैंने तुझे बताया क्योंकि तू मेरा भक्त है मित्र भी।" यह सुनकर अर्जुन ने पूछा–'भगवन् आपका तो पीछे का है और विवस्वान् का बहुत पुराना। फिर मैं कैसे जानूं कि सृष्टि के आदि में आपने विवस्वान् को सब बताया था।' श्रीकृष्ण महाराज ने उत्तर दिया–हे अर्जुन मेरे और तेरे और भी अनेक जन्म हो चुके हैं; उन सब मैं जानता हूं, तू नहीं जानता। मैं अविनाशी, अजन्मा सब प्राणियों का अधिष्ठाता होता हुआ भी योग माया अपनी प्रकृति को आधीन करके प्रकट होता हूं। हे भारत जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है,

मैं अपने रूप को प्रकट करता हूं। साधु पुरुषों का उद्धार पापियों का विनाश तथा धर्म की स्थापना करने के लिये जब तब प्रकट होता हूं। जो पुरुष मेरे इस दिव्य जन्म और कर्म को सच-सच जान लेता है, वह फिर जन्म-मरण के बन्धन से छूट कर परमात्मा में अधिष्ठित हो जाता है। ऐसे कितने ही पुरुष ज्ञान रूप तप से पवित्र होकर राग, भय और क्रोध की भावना से मुक्त होकर परमात्मा में लीन हो चुके हैं। हे अर्जुन! परमात्मा की भक्ति जिस रूप में जो कोई करता है, उसे वही रूप उसका प्राप्त होता है। इस रहस्य को जानकर बुद्धिमान् पुरुष उसी के मार्ग पर चलते हैं। जो मनुष्य कर्म फल चाहते हुए देवताओं की पूजा करते हैं, उन्हें मनुष्य लोके में कर्म फल

प्राप्त होता है। गुण और कर्मों के बटवारे से ब्राह्मण, क्षत्रिय
वैश्य और शूद्र की रचना को भी अविनाशी अकर्ता परमात्म
की रचना समझ। जो यह जानता है कि परमात्मा को कर्म
फल की इच्छा नहीं है। अतएव उसे कर्मों का लेप नहीं होता
पुरुष भी कर्मों से नहीं बंधता। यह समझ कर पहले
प्रमुखों ने कर्म किये हैं। इसलिये तू भी पूर्वजों द्वारा सद
किये हुए कर्मों को इसी प्रकार कर। कर्त्तव्य-कर्म क्या है, क
नहीं है इस विषय में विद्वान् पुरुष भी चकरा जाते हैं। मैं तु
उस कर्म को ऐसे समझा दूंगा कि तू संसार के बन्धन से मु
हो जायगा। कर्म की गति रहस्यमय है। कर्म का स्वरूप
समझो निषिद्ध कर्म का भी और अकर्म का भी। जो पुरु

...र्म को अकर्म अर्थात् अहंकार, फल कामना रहित कर्म समझता है और इसी प्रकार निष्काम-कर्म अर्थात् अकर्म को ही कर्म मानता है वह बुद्धिमान् योगी सम्पूर्ण कर्मों का करने वाला है। हे अर्जुन ! जिस व्यक्ति के सब कार्य कामना और संकल्प से रहित हैं। इस प्रकार ज्ञान की अग्नि से जिसने सब कर्मों को झुलसा दिया है, वह पंडित है। कर्म फल की आसक्ति को छोड़कर संसार का आश्रय छोड़ कर सदा परमात्मा में तृप्त रहने वाला पुरुष भली प्रकार कर्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता। फल की आशा छोड़े हुए, अन्तःकरण और शरीर को वश में रखने वाला, सब भोग-सामग्री से निस्पृह पुरुष शरीर से कर्म करता हुआ भी पापी नही बन पाता। जो कुछ मिल जाय

उससे सन्तुष्ट, सुख-दुःख, हर्ष-शोक से परे, ईर्षा से रहि
सिद्धि-असिद्धि में समान भाव रखने वाला पुरुष कर्म करके भ
उनसे बन्धता नहीं । आसक्ति से रहित पुरुष मुक्त हो जाता
उसका चित्त ज्ञान में रमता है। ऐसा पुरुष यज्ञ के लिये करत
है, अतएव उसके कर्म सुख-दुःखादि फल उत्पन्न नहीं करते
जिस पुरुष का अर्पण, हवि, अग्नि होता है वह ब्रह्म ही है
प्राप्तव्य भी ब्रह्म ही है। कोई योगी देव यज्ञ करते हैं, को
ब्रह्माग्नि में यज्ञ से यज्ञ करते हैं अर्थात् ज्ञान द्वारा परब्र
परमात्मा में एकही भाव से अवस्थित होते हैं। कोई कर्ण आ
इन्द्रियों का हवन संयम की अग्नि में करते हैं अर्थात् इन्द्रि
को विषयों से रोके रखते हैं, कोई शब्द आदि विषयों व

इन्द्रियों में हवन करते हैं अर्थात् विषयों का इन्द्रियों से ग्रहण करते हुए भी उन्हें भस्मी भूत करते हैं। कोई योगी जन इन्द्रिय और प्राणों के व्यापार को ज्ञान से प्रकाशित परमात्म स्थिति की अग्नि में हवन करते हैं। वे अपनी सब चेष्टाओं से परमात्मा का ही चिन्तन करते हैं। कोई ईश्वरार्पण बुद्धि से लोक सेवा में द्रव्य लगाते हैं (द्रव्य यज्ञ) कोई स्वकर्तव्य-पालन रूप तपो-यज्ञ करते हैं। कोई अष्टाङ्ग योग रूप योग यज्ञ को करते हैं दूसरे तीक्ष्ण व्रती स्वाध्याय-ज्ञान यज्ञ के करने हारे हैं। कोई अपान में प्राण वायु को और प्राण में अपान वायु को इस प्रकार दोनों की गति को रोककर प्राणायाम करते हैं। कुछ आहार को नियमित करके प्राणों में प्राणों का हवन करते हैं। ये सब

यज्ञ को मानने वाले यज्ञ से पाप का नाश करते हैं। हे अर्जुन
यज्ञों के परिणाम अमृत को भोगने वाले ये नित्य ब्रह्म व
प्राप्त करते हैं। यज्ञ रहित पुरुष को तो इस लोक में भी सुर
नहीं मिलता, परलोक की तो कौन कहे ! वेद वाणी में ऐ
कितने ही यज्ञों का विस्तार बताया गया है। वे सब कर्मज
ऐसा जानकर मुक्त होगा। द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञानरूप यज्ञ श्रे
है। हे अर्जुन ! कर्मों की अन्तिम सीमा तो ज्ञान ही है। तत्
वेत्ता ज्ञानियों से यह ज्ञान, नम्रता, सेवा और पूछ-पूछ क
जानना चाहिये। इसको समझ लेने पर फिर ऐसे चक्कर में न
पड़ेगा और फिर अपने आत्मा में और मुझमें भी सब भू
प्राणियों को अवस्थित देखेगा। यदि तू सबसे अधिक पाप कर

...ला भी है तो भी ज्ञान रूप नौका द्वारा सब पापों के पार ...र जायगा। हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन को जला ...ता है ऐसे ही ज्ञान अग्नि सब कर्मों को राख कर देता है। ...न के समान पवित्र इस लोक में कुछ नहीं है, उस ज्ञान को ... म योग का साधक पाकर अपने आत्मा में अनुभव करता ...। जितेन्द्रिय ज्ञान की लगन वाला, श्रद्धालु पुरुष ज्ञान को पा ...ता है और ज्ञान को प्राप्त करके शीघ्र ही परमशान्ति का लाभ ...ता है। जो पुरुष अज्ञानी है, श्रद्धालु भी नहीं, डांवाडोल है, ...स लोक और परलोक में विश्वास नहीं रखता, वह मारा-मारा ...रता है। संशयात्मा को चैन नहीं मिलता। हे धनञ्जय ! समत्व ...रूप योग से जिसने सब कर्मों का त्याग किया हुआ है

दुविधायें सब काट दी हैं, जो परमात्म-परायण है, उसे कर्म नहीं बांधते । इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन ! तू अज्ञान से उत्पन्न अपने हृदय में स्थित इस संशय को ज्ञान की तलवार से काट कर तैयार हो जा ।

इति श्रीमद् भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे कर्मयोगो नाम चतुर्थो अध्याय ॥४॥

* चौथे अध्याय का महात्म्य *

श्री भगवान् ने कहा—हे लक्ष्मी, जो पुरुष श्रीगीताजी का पाठ करते तिनके साथ छुए से अधर्म देह से छूटकर विवेक को प्राप्त होते हैं । तब लक्ष्मी जी ने पूछा हे श्री महाराज ! श्री गीताजी के पाठ करने वाले के साथ छूक

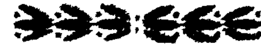
कोई जीव मुक्त भी हुआ है ? तब श्री भगवानजी ने कहा हे लक्ष्मी ! तुम को मैं मुक्त हुए की एक पुरातन कथा सुनाता हूँ, तू श्रवण कर । भगीरथी गंगा जी के तट पर श्री काशी जी नगर है वहां एक वैष्णव रहता था श्री गंगाजी में स्नान कर श्री गीता जी के चौथे अध्याय का पाठ किया करता था और उस के पास तपस्या ही धन या माया का जंगल कुछ नहीं था, एक दिन वह साधू वन में गया वहां बेरी के दो वृक्ष थे, उनकी बड़ी छाया थी । वह साधू वहीं बैठ गया और बैठते ही उसको निद्रा आ गई । एक बेरी से उसके पाव लगे और दूसरी के साथ सिर लग गया वह दोनों आपस में काँप कर पृथ्वी पर गिर पड़ीं । उनके पत्ते सूख गये । परमेश्वर के करने से वह दोनों बेरियां ब्राह्मण के घर जा पुत्रियां हुईं । हे लक्ष्मी ! बड़े उग्र पुण्यों से मनुष्य देह मिलती है फिर ब्राह्मण के घर जन्म लेकर दोनो लड़कियों ने तपस्या करनी आरम्भ की जब दोनों बड़ी हुईं तब उनके माता-पिता ने कहा पुत्रियो ! हम तुमको

विवाह करते है । तब उन दोनों ने माता-पिता से कहा हम विवाह नहीं करातीं । उनको अपने पिछले जन्म की खबर थी । वह जाति में सुन्दर थी उन्होंने कहा एक हमारे मन में कामना है यदि परमेश्वर वह पूर्ण करे तब बहुत भली बात है उनके मन में यही था कि वह साधू जिसके स्पर्श करने से हमको अधम देह से छूट के यह देह मिली है वह मिले तब बहुत भली है इतना विचार कर उन दोनों कन्याओं ने माता-पिता से तीर्थ यात्रा करने की आज्ञा माँगी । तब माता-पिता ने तीर्थ यात्रा की आज्ञा दी । और कहा तुमको श्री परमेश्वर की आज्ञा है तब उन दोनों कन्याओं ने माता-पिता का चरण वन्दना करके गमन किया तीर्थ यात्रा करती करती बनारस पहुँची वहां जाकर देखा वह तपस्वी बैठा है जिसकी कृपा से हम बैरी की देह से छूटी हैं । तब दोनों कन्याओं ने जा दराडवत करी । चरण बन्दना करके विनय करी ! हे सन्त जी तुम धन्य हो तुमने हमको कृतार्थ किया है तब उस तपस्वी ने कहा तुम कौन हो मैं तुमको

चानता नहीं, तब कन्याओं ने कहा हम आपको पहचानती हैं हम पिछले जन्म में बेरियों की योनि में थी, आप एक दिन वन में आये। तुमको बहुत भूख लगी थी तब बेरियों को छाया तले आ बैठे। लम्बासन होने से एक को आपके चरण लगे दूसरी को सिर लगा उसी समय हम बेरी की देह से मुक्त हुईं। अब ब्राह्मण के घर जन्म लिया है हम ब्राह्मणी हैं। बड़ी दुखी हैं। तुम्हारी कृपा से हमारी गति हुई तब तपस्वी ने कहा मुझे इस बात की खबर नहीं थी। अब तुम आज्ञा करो तुम्हारी सेवा करूं। तुम ब्रह्मरूप उत्तम जन्म श्रीनारायणजी का सुख हो। तब उन कन्याओं ने कहा हमको श्री गीताजी के चौथे अध्याय का फल दान करो जिसको पाकर हम सुखी होवें, तब उस तपस्वी ने चौथे अध्याय का फल दान किया और उनको कहा कि तुम आवागमन से छूट जाओ। इतना कहते ही आकाश से विमान आये दोनों ने देव देही पाकर बैकुण्ठ को गमन किया फिर तपस्वी ने कहा

मैने नहीं जाना था कि श्री गीता जी के चौथे अध्याय का ऐसा महात्म्य है तब वह मन बचन कर्म कर नित्य प्रति पाठ करने लगा तब श्री नाराय जी ने कहा है लक्ष्मी यह चौथे अध्याय का महात्म्य है जो तुमने सुना है

इति श्रीपद्म पुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्तरा खण्डे गीता महात्म नाम चतुर्थो अध्याय सम्पूर्णम ॥४॥



* अथ पांचवां अध्याय *

अर्जुनोवाच । अर्जुन ने पूछा—'हे भगवन् आप कर्मों क त्याग और फिर उनमें जुट जाना (कर्मयोग) दोनों की सलाह देते हैं। इन दोनों में जो एक निश्चय रूप से अधिक कल्याण कारक हो, मुझे तो वह बताओ।' श्री भगवानुवाच ॥ महाराज

। हे अर्जुन ! कर्मों का सन्यास और कर्मों का योग दोनों
कल्याण कारक हैं, इन दोनों में से कर्म छोड़ने की अपेक्षा
में जुटे रहना अधिक कल्याण कारक है । जो पुरुष किसी
द्वेष नहीं करता, न किसी को चाहता है वह तो सन्यासी ही
। ऐसा निर्द्वन्द पुरुष बड़ी आसानी से बन्धन रहित हो जाता
। सन्यास और योग को अलग-अलग मानना मूर्खता है,
समझता नहीं । दोनों में से एक को भी भली भांति आश्रय
। से दोनों का फल प्राप्त हो जाता है । ज्ञानीयोगी जिस
पद को पहुंच पाते हैं, निष्काम कर्मयोग के बिना कर्म-
यास की स्थिति प्राप्त करना कठिन है । निष्काम कर्मयोगी
न करने वाला पुरुष इस स्थिति को चुटकी में ही पा जाता

है । निष्काम कर्म योगी, शुद्धात्मा, शरीरेन्द्रिय को वश में रख
वाला, सब प्राणियों में एकी भाव से बरतने वाला महानुभ
कर्म करता हुआ भी उसमें लिप्त नहीं होता । तत्त्वज्ञानी कर्म
योगी, इन्द्रियां सब अपने विषयों में विचरती ही हैं, ऐसा सम
कर देखता, सुनता, छूता, सूंघता, खाता, चलता, श्वांस लेत
बोलता, त्यागता लेता, आंख खोलता और मीचता हुआ
मैं कुछ नहीं करता ऐसा माने । हे अर्जुन ! संग को छोड़क
सब कर्मों को परमात्मा में अर्पित कर जो पुरुष कर्म करता
वह जल से कमल पत्र की न्याई कर्म से लिप्त नहीं होग
निष्काम कर्म योगी असक्ति छोड़कर, अन्त करण की शुद्धि
लिये केवल इन्द्रियों, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी कर्म कर

। निष्काम कर्मयोगी, कर्मफल का त्याग करके श्रद्धा स्वरूप (भगवत् प्राप्ति रूप) शान्ति को पाता है। सकामी पुरुष फल में आसक्त होकर कामना के कारण बन्धता है। मन से सब कर्मों को त्याग कर, वशी पुरुष नौ द्वार वाले इस देह में करने करवाने के झंझट से अछूता रह सुखी रहता है। परमेश्वर ने सृष्टि में कर्ता, कर्म अथवा कर्मफल संयोग किसी को भी नहीं बनाया, परन्तु स्वभाव से यह प्रवृत्ति है। सर्वव्यापी परमात्मा न किसी के पाप कर्म को लेता है, न किसी के शुभ कर्म को। किन्तु माया से ज्ञान ढका रहता है इसलिये सब जीव भ्रम में पड़े हुये हैं। जिनके अन्तःकरण का यह अज्ञान नष्ट हो गया है, उनका वह ज्ञान सूर्य के समान उस परमात्मा का

साक्षात्कार करा देता है। हे अर्जुन! जो मन, बुद्धि अ
अन्तःकरण सब प्रकार से परमात्मा के स्वरूप के साथ ए
भाव रखते हैं, वे ज्ञान से पाप को छोड़कर, जन्म मरण
बन्धन से छूट जाते हैं। इसलिये समदर्शी पंडित जन विद्व
एवं विनयी ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल सब
एक दृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार समता में जो अपने
को साध लेते हैं, वे जीते हुये ही मुक्त हो जाते हैं। क्यों
परमात्मा निर्दोष और सम है, वे इसमें स्थित हैं। जो पु
लगने वाली वस्तु को लेकर प्रसन्न होता और अप्रिय से दुः
नहीं होता वह स्थिर बुद्धि, संशय रहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष
में एकीभाव से स्थित है। विषयों के बाहरी संयोग से निर्लि

मैं चैन अनुभव करता है। वह
हने वाला पुरुष अन्तःकरण में चैन अनुभव करता है। वह
ब्रह्म में एकीभाव से अवस्थित हुआ पुरुष अक्षय सुख को प्राप्त
करता है। इन्द्रिय एवं विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाला
योग तो दुःख ही उत्पन्न करते हैं। ये योग अनित्य हैं। इस
लिये विवेकी पुरुष इनमें नहीं रमता। जो मनुष्य शरीर छोड़ने
से पहले ही काम, क्रोधादि को जीत लेता है वह पुरुष वस्तुतः
सुखी है। जो पुरुष अन्तर आत्मा में सुख, चैन और आनन्द
करता है वह योगी ब्रह्म को प्राप्त होता है। पाप जिनके
गये हैं, आत्मवशी, सब से हित रखने वाले, संशय रहित
पुरुष परब्रह्म को प्राप्त होते हैं। काम क्रोधादि से
अन्तःकरण वाले ज्ञानी पुरुषों के लिये चारों ओर

मात्म ही है। बाह्य भोग स्पर्शों को त्याग कर, दृष्टि को भौंहों के बीच में साध कर, श्वास-अश्वास की निमित्त (सम) करके इन्द्रिय, मन और बुद्धि को जीतने वाला इच्छा, भय और क्रोध से रहित हुआ, मनन करने वाला सदा मुक्त ही है। हे अर्जुन जो पुरुष मुझे यज्ञ एवं तप का भोग करने वाला, सब लोकों का अधिपति और सब प्राणियों का मित्र समझता है वह शान्ति को प्राप्त होता है।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम पंचमों अध्याय ॥५॥

* पांचवें अध्याय का महात्म्य *

श्री भगवान ने कहा—हे लक्ष्मी! अब पाँचवें अध्याय का महात्म्य सुन। एक ब्राह्मण पिंगला नाम अपने धर्म से भ्रष्ट हो गया था। वह कुसंग में जा बैठा। मच्छी माँस खाता मदिरा पान करता हुआ जुआ खेलता तब उस ब्राह्मण को भाई चारे में से छेक दिया तब वह किसी और नगर में चला गया। दैवयोग से वह पिंगला एक राजा के यहां नौकर जा हुआ राजा के पास और लोगों की चुगलियां किया करता जब बहुत दिन बीते तब वह धनवन्त हो गया तब उसने अपना विवाह कर लिया। पर स्त्री व्यभिचारिणी आई। जैसा वह था तैसी स्त्री आई। जो कुछ वह ब्राह्मण कहे सो वह न करे। ब्राह्मण कहे तू बाहर न जा वह रहे नहीं। जहाँ उसका जी चाहे तहां जावे, भर्ता को जाने नहीं। वह कल्पना करे और स्त्री को मारे। एक दिन उस स्त्री को बड़ी मार लगी। उस स्त्री ने दुखी होकर अपने भर्ता को विष दे दिया। वह ब्राह्मण मर

गया और उसने गीध का जन्म पाया। कितने काल पीछे वह स्त्री भी मर ग
उसने तोती का जन्म पाया तब वह एक तोते की स्त्री हुई वह तोता एक व
में रहता था एक दिन उस तोती ने तोते से पूछा—हे तोते! तूने तोते क
जन्म क्यों पाया। तब उस तोते ने कहा हे तोती मैं पिछले जन्म की बात
कहता हूँ मैं पिछले जन्म में ब्राह्मण था अपने गुरु की आज्ञा नहीं मानता था
मेरा गुरु बड़ा विद्वान था। उसके पास और विद्यार्थी भी रहते थे जब गुरु ज
किसी और विद्यार्थी को पढ़ाते मैं उनकी बात में बोल पड़ता कई बार रोक
मैं नहीं माना। मुझको गुरुजी ने शाप दिया कि जा तू तोते का जन्म पावेगा
इस कारण से तोते का जन्म पाया। अब तू कह किस कारण से तोती हु
उसने कहा मैं पिछले जन्म में ब्राह्मणी थी जब ब्याही गई तब भर्ता की आज्ञ
नही मानती थी। भर्ता ने मुझे मारा। एक दिन मैंने भर्ता को विष दिया। व
मर गया। जब मेरी देह छूटी तब बड़े नरक, नरक में मुझे गिराया है कई नरक

भुगा कर अब मुझे तोती का जन्म मिला तोते ने सुन कर कहा तू बुरी है जिसने अपने भर्ता को विष दिया। तोती ने कहा नरकों के दुःख भी मैंने ही सहे हैं अब तो मैं तुझे भर्ता जानती हूँ एक दिन वह तोती वन में बैठी थी वह गीध आया तोती को उस गीध ने पहचाना कि यह तो वही मेरी भार्या है जिसने मुझे विष दिया था। वह गीध तोती को मारने चला। आगे तोती पीछे गीध जाते जाते तोती एक श्मशान भूमि में थक कर गिर पड़ी वहाँ एक साधू का दाह हुआ था। उस साधू की खोपड़ी वर्षा के जल के साथ भरी पड़ी थी। उसमें गिरी इतने में गीध आया उस तोती को मारने लगा। उस खोपड़ी के जल के साथ उनकी देह धोई गई। वह आपस में लड़ते लड़ते मर गये। अधम देह से छूट देव देही पाई। विमान आये तिन पर बैठ बैकुण्ठ को गये। तब तोती ने कहा हे गीध ऐसा पुण्य कौन किया है जो बैकुण्ठ को चले हैं। गीध ने कहा, हमने तो जन्म में पुण्य कोई नहीं किया। मैं इस पुण्य को नहीं

जानता । इतने में दोनों धर्मराज की पुरी में गये । धर्मराज ने कहा क्यों रे गीध तू पीछे कौन था ? उसने कहा ब्राह्मण था मुझे मेरे भाइयों ने देश निकाला दिया था । मैं और देश में जा बसा वहां मैंने विवाह किया । दुराचारिणी स्त्री मिली उसने मुझे विष देकर मारा और वह मर कर तोती हुई मैं गीध हुआ । मैं इसको पहचान कर मारने लगा वहां एक श्मशान में मनुष्य की खोपड़ी जल के साथ भरी हुई थी उसमें तोती गिरी मैं भी वहां पहुँचा । उसका जल हम दोनों को स्पर्श हुआ तत्काल हमारी देह छूटी देव देही पाई विमानों पर चढ़ा कर दोनों को वैकुण्ठ धाम को ले चले हैं । यह कौतुक हमको कुछ मालूम नहीं हुआ । तब धर्मराज ने कहा वह खोपड़ी एक साधू की थी वह श्री गङ्गा जी में स्नान करके नित्य श्रीगीता जी के पांचवें अध्याय का पाठ करता था । वह खोपरी परम पवित्र थी । उसके स्पर्श से तुम वैकुण्ठ वासी हुए हो और अपने परिषदों को धर्मराज ने आज्ञा दी कि जो प्राणी श्री गङ्गा जी का स्नान करके गीता का पाठ करते हैं तिनको मेरे पूछे बिना वैकुण्ठ को ले जाया करो,

सन्तों की सेवा करते हैं तिनको भी वैकुण्ठ ले जाया करो तब परिषद दोनों वैकुण्ठ ले गये । श्रीनारायण जी ने कहा हे लक्ष्मी यह गीताजी के पाँचवें पाय का महात्म्य है जो तुमने श्रवण किया ।

इति श्रीपद्म पुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्तरा खण्डे गीता महात्म्य नाम पंचमों अध्याय सम्पूर्णम ।५।।



* अथ षठोऽध्याय *

आत्मसन्यम योग

श्रीकृष्ण महाराज ने कहा—"जो पुरुष कर्मफल न चाहता हुआ करने योग्य कर्म करता रहता है वह संयासी और योगी हैं । केवल अग्नि होमादि और क्रियाओं का त्याग करने

वाला सन्यासी अथवा योगी नहीं। हे पाण्डु पत्र अर्जुन ! जिस को सन्यास कहते हैं उसी को तू योग जान, क्योंकि संकल्पों को न त्यागने वाला कोई भी योगी नहीं होता। योगी बनने की इच्छा वाले मननशील मनुष्य के लिये निष्काम कर्म साधन है और योगारूढ़ हो जाने पर संकल्पों का अभाव कल्याण का हेतु है। जब मनुष्य न तो इन्द्रियों के भोगों में आसक्त होता और न कर्मों में, उस समय वह सब संकल्पों का त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहाता है। अपने द्वारा ही संसार-समुद्र से अपना उद्धार करे, अपने को गिरावे नहीं। कारण कि यह जीवात्मा स्वयं अपना मित्र और शत्रु है। जिसने अपने मन और इन्द्रिय सहित शरीर को जीत लिया है वह अपना स्वयं मित्र हैं, जिस

ने नहीं जीता है उसका आपा ही शत्रु है। सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख तथा मान-अपमान आदि द्वन्द्वों में निर्विकार, शान्त स्वाधीन शरीर वाले पुरुष की स्थिति परमात्मा में हो जाती है वह तद्रूप रहता है। ज्ञान-विज्ञान से जिसका अन्तःकरण तृप्त है, जो निर्विकार, इन्द्रिय जयी तथा मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण में समानभाव रखने वाला है वह परमात्मा से युक्त अर्थात् योगी कहा जाता है। सर्वहितैषी, मित्र, शत्रु, उदासीन दोनों पक्षों का हितू, द्वेषी बन्धु, साधु और पापी सब में समान भाव रखने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ है। अन्तःकरण और इन्द्रिय सहित शरीर को जीत कर वासना और संग्रह शीलता से दूर रहकर एकान्त में अपने आत्मा को परमात्मा के स्वरूप से युक्त करने की

साधना करनी चाहिये। शुद्ध भूमि पर कुशा, उसपर मृगछाला और उसपर वस्त्र ऐसे स्थिर आसन को जो न बहुत ऊँचा हो न बहुत नीचा बिछावे। उस आसन पर बैठकर मनको एकाग्र करके चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में किये हुये आत्मा की शुद्धि के लिये योग का अभ्यास करे। इस अभ्यास के समय शरीर सिर और गर्दन सीधे अचल स्थिर रहें, इधर उधर न देखकर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाये रहे। अन्तःकरण शांत हो, भय रहित एवं ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित हो। मन को वश में किये भगवान् का ध्यान करता रहे। इस प्रकार आत्मा को परमेश्वर के रूप में निरन्तर लगाता हुआ स्वाधीन मनवाला योगी, परमेश्वर में स्थित रूप, पमानन्द में

परिणत होने वाली शांति को पा लेता है, इस अभ्यास की सिद्धि, बहुत खाने वाले को भी नहीं होती और बिल्कुल न खाने वाले को भी नहीं होती । अतिशयन करने वाला अथवा अत्यंत जागने वाला भी इस सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता। यथायोग्य आहार-विहार, कर्मजेष्टा और शयन-जागरण करने वाले व्यक्ति को यह सब दुःखों का नाश करने वाली योग प्राप्त होता है । इस प्रकार अभ्यास से जब वश में आया मन परमात्मा में ही स्थित रहने लगता है, सब इच्छाओं से पुरुष निःस्पृह हो जाता है, तब वह योग युक्त कहाता है । जिस प्रकार वायु रहित स्थान में रखे दीपक की लौ हिलती-जुलती नहीं वैसे ही योग के अभ्यासी पुरुष का वश में किया हुआ मन

चलायमान नहीं होता । हे अर्जुन ! जब ऐसी स्थिति हो जाती है कि—योग के अभ्यास से निरुद्ध हुआ मन विषयों से उपराम हो जाता है, मनुष्य का आत्मा परमात्मा के दर्शन में ही सन्तुष्ट रहता है; इन्द्रियों से अगम्य केवल सूक्ष्म बुद्धि से ग्राह्य अनन्त आनन्द को अनुभव करता है, और ध्यान से विचलित नहीं होताः इस सिद्धि लाभ से अधिक किसी लाभ को बड़ा नहीं मानता और भारी से भारी दुःख से भी इस सिद्धि को नहीं छोड़ता वह सिद्धि, जिसमें दुःख का लेश करना ही चाहिए। संकल्प से उत्पन्न होने वाली सब कामनाओं को छोड़कर, मन से सब इन्द्रियों को भली प्रकार वश में करता हुआ, क्रमशः अभ्यास करता हुआ धीरज और ज्ञान पूर्वक विषयों से उपराम

। फिर चित्त को परमात्मा के स्वरूप में लगाकर किसी दूसरी ओर न जाने दे। चंचल और अस्थिर मन जिधर निकल जावे उधर से फिर घेर कर परमात्मा में ही स्थिर करे। जब मन शान्त हो जाता है तब उस पाप से रहित, रजोगुण से अछुत्स्व योगी को ब्रह्मस्वरू अति उत्तम आनन्द प्राप्त होता है। पापसे रहित योगी इस प्रकार योग करता हुआ परमात्मा-प्राप्ति रूप अनन्त आनन्द को प्राप्त करता है। हे अर्जुन! इस प्रकार योगाभ्यास के द्वारा परमात्मा मे मुक्तात्मा पुरुष सब में समदर्शी होकर सब प्राणियों को अपने सर्वव्यापी आत्मा में और आत्मा को सब भूतों में अनुभव करता है। जो पुरुष सब भूतों में सब के आत्मरूप परमात्मा को अनुभव कर लेता है और

परमात्मा में सब प्राणियों की स्थिति को जान लेता है। वह परमात्मा से अथवा उससे परमात्मा कभी नहीं बिछुड़ता। जो पुरुष सब प्राणियों में स्थित परमात्मा का ध्यान करता है, वह योगी सब कुछ करता हुआ भी परमात्मा में स्थित रहता है हे अर्जुन ! जो पुरुष सुख और दुःख को भी अपने समान सब में देखता है, वह सर्वश्रेष्ठ योगी है, यह सब सुनकर अर्जुन ने कहा—"हे मधुसूदन ! आपने जिस समत्वयोग की सिद्धि का वर्णन किया है, वह तो मनके चंचल स्वभाव के कारण देर तक सिद्ध नहीं रह सकेगा। हे कृष्ण ! मन बड़ा चंचल, हठी, बलवान् और दृढ़ है उसको रोकना तो वायु को रोकने समान अति दुष्कर कार्य है।" श्री भगवान् कृष्ण ने इसके

उत्तर में कहा—"हे महाबाहो ! निस्सन्देह, मन चंचलता और कठिनता से वश में आने वाला है। परन्तु अभ्यास और वैराग्य से यह वश में आजाता है। जो अपने मन को वश में नहीं कर सकता। उसके लिये तो योग की प्राप्ति कठिन है। मन को वश में करके पुरुष साधन और यत्न से परमात्मा में स्थिति रूप योग को पा सकता है।" अर्जुन ने फिर पूछा—"जो पुरुष श्रद्धालु तो हो परन्तु योग का अभ्यास करते हुए मन को वश में न रख सके, वह योग सिद्धि तक न पहुंच कर किस गति को प्राप्त करता है ? कहीं ऐसा तो नहीं कि भगवत् प्राप्ति के मार्ग में भटका हुआ, कहीं भी न पहुंचकर छिन्न-भिन्न बादल की भांति सांसारिक भोगों और भगवत् प्राप्ति

दोनों से ही हाथ धो बैठता हो ! हे कृष्ण मेरा यह संशय आप ही मिटा सकते हैं। और ऐसा कोई व्यक्ति नहीं ।" भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! ऐसे पुरुष को इस लोक और परलोक दोनों में पी स्थान है। हे, प्यारे ! शुभ कर्म करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती। योग भ्रष्ट पुरुष पुण्य लोकों में वर्षों निवास कर शुद्ध आचरण वाले श्रीमान् पुरुषों के घरमें जन्म लेता है । अथवा वह ज्ञानवान् योगियों के घर उत्पन्न होता है; परन्तु यह जन्म अति दुर्लभ है । इस प्रकार दोनों में कहीं भी जन्म लेकर उस पुरुष को पूर्व शीरीर से सम्बद्ध समत्व बुद्धि का संस्कार स्वभावतः प्राप्त होता है। और हे अर्जुन ! वह सिद्धि के लिये प्रयत्न करने लगता है। वह पूर्व जन्म में योग

भ्रष्ट पुरुष पूर्व संस्कारों के कारण स्वतः योगसिद्धि के मार्ग में चलता है। योग के इस जिज्ञासु उपदेश की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार प्रयत्न से यत्न करने पर पाप से रहित हो योगी बनता है। यह सिद्धि अनेक जन्मों में प्राप्त होती है। सिद्धि प्राप्त होने पर परमात्मा के स्वरूप में लीन होता है। हे अर्जुन! योगी पुरुष तपस्वी, ज्ञानी और सकाम कर्मी सब से अधिक श्रेष्ठ हैं अतएव तू योगी बन। योगियों में भी जो योगी अपनी आत्मा को परमात्मा के स्वरूप में स्थापित कर श्रद्धा पूर्वक भगवान् का ध्यान करता है, वह परमश्रेष्ठ योगी है।

इति श्रीमद् भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे कर्मयोगो नाम षष्ठो ऽध्यायः ॥६॥

❀ अथ छठे अध्याय महात्म्य ❀

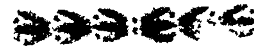
श्रीभगवान उवाच—हे लक्ष्मी! छठे अध्याय का महात्म्य सुन। गोदावरी नदी के तट पर एक नगर था वहां एक जानश्रुति राजा था बड़ा धर्मज्ञ था धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधक था। तिसकी प्रजा भी धर्मज्ञ थी। लोग राजा की स्तुति करते थे। एक दिन उस नगर में हंस उड़ते-उड़ते आ निकले। उनमें से एक बैठता ही उतावला हो उड़ गया। तब नगर के पंडितों ने कहा हे हंस! तू ऐसा उतावला उड़ा है क्या तू राजा जानश्रुति से आगे ही स्वर्ग को जाना चाहता है। तब उन पक्षियों के सरदार ने कहा—इस राजा से भी एक रयैक मुनि ऋषीश्वर श्रेष्ठ है वह बैकुण्ठ का अधिकारी होवेगा। वैकुण्ठ लोक स्वर्ग से ऊँचा है जब यह वार्ता राजा ने श्रवण की तब मन में विचार किया कि मेरे से उसका पुण्य बड़ा होवेगा [illegible] वह हंस स्तुति करते हैं। विचार कर कहा उसका [illegible]थी है

। मंगवाकर सवारी करी, प्रथम बनारस श्री काशीजी में जाकर गंगा में
ान किया, दान किया शिवजी महाराज का दर्शन किया फिर लोगों से पूछा
हाँ कोई रैयक मुनि भी हैं ? लोगों ने कहा नहीं तब राजा दक्षिण देश को
या द्वारिकानाथ को परसा, वहाँ स्नान ध्यान कर दान किया । लोगों से पूछा
हां कोई रैयक मुनि हैं ? उन्होंने कहा नहीं । तब राजा पश्चिम दिशा को
या जहां जहां तीर्थों पर गया वहां वहां जाकर दान स्नान करके रैयक मुनि
ो पूछा फिर राजा उत्तर दिशा को गया बद्रीनाथजी को परसा वहाँ से राजा
। रथ न चला । तब राजा ने कहा मैंने सकल धरती की प्रदक्षिणा करी है।
सी स्थान पर रथ नहीं अटका यहाँ रथ अटका है । यहां कोई पुण्यात्मा
ता है जिसके तेज से मेरा रथ नहीं चलता । तब राजा रथ से उतर
ागे चला देखे तो एक पर्वत की कन्दरा में अतीत बैठा है उसके
ज से बहुत प्रकाश हो रहा है । जैसे सूर्य की किरणें होती हैं

तब राजा ने देखते ही कहा यही रैपक मुनि होगा। राजा ने दण्डवत कर चरण वन्दना करी। हाथ जोड़ के स्तुति करी हे गुसाईं जी आपके दर्शन कर मेरा कल्याण हुआ। आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज मैं कृतार्थ हुआ हूँ। तब रैपक मुनि ने राजा का आदर किया और कहा हे पृथ्वीपति तू चार धाम के परसनहारा धर्म के साधन हारा है तू पुण्यात्मा है सत्कार सहित राजा को अपने पास बिठा लिया तब कन्द मूल मंगवाकर राजा को दिये। तब राजा ने मुनि से पूछा आपका तेज किसके बल से है ? तब मुनि ने कहा हे राजा मैं तो अतीत जटाधारी भस्माङ्गी कोपीनधारी हूँ पुण्य क्या करना था माया मेरे पास नहीं पर हमारे यहाँ एक बात है। नित्य गीता के छठे अध्याय का पाठ करता हूँ इस कन्दरा में उसी का उजाला है। यह सुनकर राजा ने अपने पुत्र को बुलाकर कहा हे पुत्र आज से तू राज कर मैं तीर्थों को जाता

इतना कहकर राजा के राज त्याग दिया। रैयक मुनि से गीता के छटे अध्याय का पाठ करना आरम्भ किया। इस पाठ के प्रताप से राजा त्रैकालदर्शी हुआ इस प्रकार कई वर्ष बीत गये। एक दिन प्राणायाम करके दोनों ने देह त्याग किया स्वर्ग से विमान आये उनपर बैठ कर बैकुण्ठ गये श्रीनारायणजी कहे हैं हे लक्ष्मी! यह छटे अध्याय का महात्म्य है सो तूने सुना।

इति श्रीपद्म पुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्तरा खण्डे गीता महात्म्य नाम षष्ठो अध्याय सम्पूर्णम ॥६॥



* अथ सातवां अध्याय *

ज्ञान-विज्ञान योग

श्रीकृष्ण भगवान ने कहा—हे पार्थ ! परमात्मा में चित्त को लगाकर, उसी का आश्रय लेकर अनन्यभाव से भगवत परायण योग में संलग्न हो समग्र ऐश्वर्य विभूति, बल आदियुक्त भगवान् को निश्चय ही कैसे जानेगा सो सुन। मैं तुझे यह सब तत्त्व ज्ञान सम्पूर्णता से बताऊँगा, जिसको जानकर फिर और कुछ जानने योग्य बाकी नहीं बचता। हजारों मनुष्यों में से कोई विरला ही सिद्धि का प्रयत्न करता है और उन यत्न करने वाले योगियों में से कोई विरला ही भगवान् को जान पाता है। हे अर्जुन ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि

और अहंकार ये आठ प्रकार से विभक्त प्रकृति है और यह आठ प्रकार की जड़ प्रकृति अपरा कहलाती है। सम्पूर्ण जगत् का धारण करने वाली जीवभूत चैतन्य प्रकृति भगवान् की परा प्रकृति कहलाती है। हे अर्जुन! तू यह निश्चय करले कि जगत के सम्पूर्ण पदार्थ इन दोनों प्रकृतियों से उत्पन्न होने वाले हैं। और परमात्मा सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, प्रलय रूप मूल कारण है। हे धनञ्जय! परमात्मा से बाहर कुछ भी इस संसार में नहीं है। जिस प्रकार धागे में मणियां पिरोई जाती हैं, वैसे सारा जगत् मुझ (परमात्मा) में पिरोया हुआ है। जल का तत्त्व भूत रस मैं ही हूं, सूर्य चन्द्रमा की ज्योति, वेदों का सारभूत ओंकार, आकाश का शब्द, पुरुषों का पौरुष, पृथ्वी का गन्ध,

अग्नि का तेज, प्राणियों का चैतन्य, तपस्वियों का तप, सब पदार्थों का सनातन कारण मैं ही हूं। हे अर्जुन! मैं बुद्धिमानों की बुद्धि, तेजस्वियों का तेज, बलवानों का कामना एवं आसक्ति से रहित बल और प्राणियों में धर्म के अनुकूल शास्त्र विहित काम हूं। तथा और भी जो सत्व, रज एवं तप सम्बन्धी भाव हैं, उनका भी मूल मैं ही हूं। वस्तुतः उनमें मैं या वे मेरे में नहीं हैं। यह समग्र गगन इन तीनों सात्विक, राजसिक और तामसिक भावों से भ्रान्त रहता है और इनसे अछूते मुझ (ब्रह्म) को नहीं जान पाता। और यह त्रिगुणमयी अलौकिक भ्रान्ति (माया) बड़ी दुस्तर है, जो परमात्मा का ही आश्रय ले लेते हैं, वे इस भ्रान्ति से निकल पाते हैं। जो लोग पापी हैं,

भ्रान्ति से जिनका ज्ञान नष्ट हो जाता है वे आसुरी भावनाओं
से घिरे रहते हैं और मेरा (भगवान्) का भजन ही नहीं करते।
हे अर्जुन! मेरा भजन तो चार प्रकार के पुरुष करते हैं. एक
अर्थार्थी अर्थात् सांसारिक पदार्थों की चाह वाला, दूसरा संकटा-
पन्न, तीसरा जिज्ञासु और चौथा ज्ञानी। इनमें जो ज्ञानी निष्काम
भावना से भक्ति करता है वही उत्तम है। ज्ञानी मुझ (भगवान्)
से प्रेम करता है और उसे मैं। यद्यपि और भी सब प्रकार के
भक्त, उदार हैं परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् परमात्म स्वरूप ही है।
वह जितेन्द्रिय सर्वोत्तम गन्तव्य स्थान रूप परमात्मा में ही
स्थित है। बहुत से जन्मों के पश्चात परमात्मा को प्राप्त हुआ,
सब कुछ वासुदेव ही हैं ऐसा अनुभव करने वाला महात्मा अति-

दुर्लभ है। शेष भक्त अपनी-अपनी इच्छाओं के अनुकूल बुद्धि
वाले होकर दूसरे देवताओं की भक्ति करते हैं। उनकी कामना
नुसार उनका इष्टदेव उसी रूप का होता है। परन्तु इन सकाम
भक्तों मे से जो कोई जैसा इष्टदेव श्रद्धा से बनाता है,
(परमात्मा) उसकी वैसी अटल भक्ति का निर्माण करते हैं। वह
पुरुष श्रद्धा से उस देवता की पूजा की चेष्टा करता है, उ
देवता से भी उसकी जो कामना पूरी होती है, उसका कारण
भी मैं (परमात्मा) ही है। परन्तु इन अल्पबुद्धि वालों को
फल मिलता है, वह नाशवान् है। देवताओं के पुजारी देवताओं
को पहुंचते हैं और मेरे भक्त मुझे। मन्द बुद्धि पुरुष
(परमात्मा) के अविनाशी सर्वोत्तम तत्त्व रूप को न सम

हुए अशरीरी भगवान् को शरीरी रूप में जानते हैं। योगमाया से छिपा हुआ मेरा रूप सब के लिए प्रकट नहीं है। इसलिए मूर्ख लोग मुझे अजन्मा और अविनाशी न समझ कर शरीरी रूप में मेरा भजन करते हैं। मैं तो, हे अर्जुन ! सब पहले हुए, वर्तमान तथा भविष्य में होने वाले सब प्राणियों को जानता हूँ, मुझे ये साधारण लोग नहीं समझते। इच्छा-द्वेष से उत्पन्न सुख-दुःखादि से भ्रान्त हुए प्राणी अज्ञान से घिरे हुए हैं। जो प्राणी पुण्य कर्मों से अपने पापों को नष्ट कर देते हैं वे इस सुख-दुःखादि द्वन्द्वों के जाल से मुक्त हो जाते हैं और मुझे (परमात्मा) स्वरूप समझ कर उसकी भक्ति करते हैं और। जो भगवान् का आश्रय लेकर जन्म और मरण से छूटने का प्रयत्न

करते हैं, वे ब्रह्म, अध्यात्म और कर्म सबको अविकल जान जाते हैं। वे ही अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ को समझ पाते हैं और शरीर छोड़ते हुए, संयत चित्त होने से मेरा (भगवान्) का ध्यान करते हैं।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे प्राकृतिभेदो नाम सप्तमो अध्याय ॥७॥



❀ अथ सातवें अध्याय का महात्म्य ❀

श्रीनारायण उवाच—हे लक्ष्मी ! अब सातवें अध्याय का महात्म्य सुन। पटेल नाम एक नगर में शंकूकर्ण नामक एक वैश्य रहता था । वह व्यापार

रने को नगर के बाहर कहीं को जा रहा था कि रास्ते में एक सर्प ने उसको सा। वह मर गया, उसके साथी उसका दाह-कृत्य कर आगे को सिधारे। जब र के घर में आये तिसके पुत्र ने पूछा मेरा बाप शंकुकर्ण कहाँ है ? उन व्यापारियों ने कहा तेरे पिता को सर्प ने डसा था वह मर गया और यह पदार्थ तेरे पिता का है सो तू ले। एक करोड़ रुपया दिया और तिसकी गति करने को कहा। क्यों जो वह अवगति मरा था। उस बालक ने अपने घर आकर ब्राह्मणों से पूछा कि सर्प के डसे से मरे को क्या गति करनी चाहिये। पंडितों ने कहा नारायणबलि करावो। उर्द के आटे का पुतला बनाकर उसके नेत्रों में चूनियां जड़ाओ जैसी विधि पण्डितों ने कही है तैसी करी बड़ा यज्ञ किया बहुत ब्राह्मण जिवाये श्राद्ध पिंड पत्तल कराये। बाकी द्रव्य जो रहा चारों भाइयों ने बांटा। एक पुत्र ने कहा जिस सर्प ने मेरे पिता को काटा है मैं तिसको मारूंगा। उन व्यापारियों से पूछा वह ठौर मुझे बताओ। जहां मेरा

पिता शंकुकर्ण मरा है। व्यापारियों ने कहा चल वह ठौर तुझे बता दें। वहाँ ले जाकर खड़ा किया। देखा तो वहां एक बमी है तिसे कुन्दा लेके साथ खोदने लगा। जब छेद बड़ा हुआ वहां से एक सर्प निकला कहा तू कौन है मेरा घर क्यों खोदता है उस बालक ने कहा मैं शंकुकर्ण का पुत्र हूँ जिस सर्प ने मेरे पिता को मारा है मैं उसको मारूंगा। तब उस सर्प ने कहा हे पुत्र मैं तेरा पिता हूँ तू मुझे इस अधम देह से छुड़ा और मुझे मत मार। यह मेरा पूर्व का कर्म था सो मैंने भोगा। तब पुत्र ने कहा हे पिताजी कोई यत्न बताओ जिससे तेरा उद्धार हो। तब उस सर्प ने कहा हे पुत्र किसी गीता पाठी ब्राह्मण को घर में भोजन करावो और उसकी सेवा करो उसके आशीर्वाद से मेरा कल्याण होगा। तब उस बालक ने अपने घर आकर अपनी स्त्री को समाचार कहा। तब उसकी स्त्री ने कहा अवश्य करो साधुओं को जिमाओ सन्तों की सेवा करने से उद्धार होय तो करो। तब खोजकर उस नगर

में जितने गीता का पाठ करते थे नित सब को बुलाकर श्रीगीताजी के सातवें अध्याय का पाठ कराया और उनको भोजन करवाया। और सेवा बहुत करी जो प्रदक्षिणा करी विनय हे महापुरुषों आप आशीर्वाद करो जो मेरे पिता शंकूकर्ण का उद्धार होवे अधम देह से छूट कर देव देही पाये विमान पर चढ़कर आकाश मार्ग को जाता हुआ अपने पुत्र को धन्य-धन्य करता वैकुण्ठ धाम में जा प्राप्त हुआ। श्रीनारायण जी ने कहा है लक्ष्मी सातवें अध्याय का यह महात्म्य है जो तूने श्रवण किया है। जो पढ़े सुनेगा सो सद्गति पावेगा।

इति श्रीपद्म पुराणे सति ईश्वर सम्बादे उत्तरा खण्डे गीता महात्म्य नाम सप्तमो अध्याय सम्पूर्णम ॥७॥



* अथ अष्टमोऽध्याय *

अक्षर-ब्रह्म योग

भगवान् श्रीकृष्ण के वचनों को सुनकर अर्जुन ने पूछा–'हे पुरुषोत्तम ! आपने जिन–ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत और अधिदैव की बात कही वे क्या हैं ? हे मधुसूदन ! यहाँ अभियज्ञ कौन है ? और वह इस शरीर में कैसे है ? संयत अन्तःकरण वाले अन्त समय में भगवान् को कैसे जान हैं ?" श्रीकृष्ण भगवान् ने उत्तर दिया–"हे अर्जुन ! सदा अविनाशी परमात्मा ब्रह्म है; अपना स्वरूप अर्थात अध्यात्म कहा जाता है; भूतों के भावों को उत्पन्न शास्त्र विहित यज्ञ, दान होमादि त्याग पूर्वक किया हुआ

ी 'कर्म' है। उत्पत्ति-विनाश स्वभाव वाले सब पदार्थ अधि-
ूत हैं। हिरण्मय पुरुष अधिदैव है और हे पुरुष-श्रेष्ठ अर्जुन!
ैं ही अधियज्ञ हूं। शरीर छोड़ने के समय जो पुरुष मेरा
(भगवान्) का स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ता है, वह
िस्सन्देह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है। अथवा यह
नुष्य जिस-जिस भाव का स्मरण करता हुआ शरीर को
ोड़ता है, उस संस्कार से संस्कृत हुआ वह उसको ही प्राप्त
ोता है। इसलिये तू सब समय निरन्तर मेरा (भगवान्) का
ी चिन्तन कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझ में ही मन
ौर बुद्धि को लगाये रहने से मुझ को ही प्राप्त होगा इसमें
भी सन्देह नहीं है। हे पार्थ! यह नियम है कि परमेश्वर

को ध्यान रूप अभ्यास-योग से युक्त किसी अन्य ओर न जाने वाले चित्त से निरन्तर उसही का चिन्तन करने वाले उस दिव्य पुरुष परमेश्वर को ही प्राप्त होते हैं। जो पुरुष सर्वज्ञ अनादि, अन्तर्यामी होकर प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों द्वारा उनको नियंत्रण रखने वाले, सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म, चराचर जगत् को धारण करने वाले, वाणी और मनसे अगोचर, सूर्यसदृश नित्य चेतन, अव्यक्त प्रकृति से उत्कृष्ट परमात्मा को स्मरण करता है, वह भक्तियुक्त पुरुष, समाधि के निरन्तर अभ्यास के कारण अन्तकाल में भी भौंहों के बीच सुषुमणा द्वारा प्राण वायु को स्थापित कर, निश्चल मन से उसका स्मरण करता है, वह उस दिव्य स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होता है। वेद को जानने

ात्ते विद्वान् जिस अविनाशी का स्वरूप बताते हैं, आसक्ति
हित यत्नशील कर्मयोगी जिसको प्राप्त होते हैं। जिसको
ाहते हुये ब्रह्मचर्य का अभ्यास करते हैं, ब्रह्म के उस स्वरूप
ो मैं तुझे संक्षेप से बताता हूं। हे अर्जुन! शरीर में विषयों
े प्रवेश करने के इन दरवाज़ों को बन्द करके अर्थात् इन्द्रियों
ो विषयों से हटाकर और मन को हृदय में रोककर, अपने
ाणवायु को भौंहों के मध्य में स्थापित कर मनोविरोध रूप
स्थिरता को प्राप्त हुआ जो पुरुष एक वर्ण रूप 'ओ३म्' ब्रह्म
ा उच्चारण करता हुआ और उस 'ओ३म्' के लक्ष्य रूप मुझ
ईश्वर) का चिन्तन करता हुआ शरीर को छोड़ता है वह सर्व-
ेष्ठ गति को प्राप्त करता है। हे अर्जुन! जो पुरुष एकचित्त

हो, परमेश्वर का सदा ध्यान करता है, उस सदा समाधिस्थ कर्मयोगी पुरुष को मैं सदा सुलभ हूं। वे परमसिद्ध महात्मा मुझे प्राप्त होकर फिर से दुःख के घर, क्षणभंगुर जन्म के चक्कर में नहीं फंसते। हे अर्जुन! ब्रह्मलोक से लेकर भूलोक पर्यन्त सब लोक ऐसे हैं कि इनमें पहुंचा हुआ पुरुष फिर फिर जन्म लेता है, परन्तु जो पुरुष मुझ ईश्वर को प्राप्त कर लेता है, उसका फिर जन्म नहीं होता। दिन रात के परिमाण को जानने वाले जानते हैं कि ब्रह्मा का दिन हजार चतुर्युगी के बराबर है और इतनी ही रात्रि है (मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक अहोरात्र कहलाता है। ऐसे १२ हजार वर्षों का हजार चतुर्युगी कहलाता है यही ब्रह्मा का एक दिन है) ऐसे दिनों के १०० वर्षों

ही ब्रह्मा की आयु है। अर्थात् ब्रह्मा भी इस प्रकार सान्त है। सम्पूर्ण व्यक्त (दृश्य) भूत ब्रह्मा के इस दिन के आरम्भ होते ही प्रकट हो जाते हैं और रात्रि के आरम्भ होने पर उसी में लीन हो जाते हैं। हे अर्जुन ! यही प्रकट और अप्रकट होने वाला भूत समुदाय दिन और रात्रि के इस चक्कर में प्रकट और अप्रकट होता रहता है। परन्तु उस अव्यक्त प्रकृति से भी श्रेष्ठ जो दूसरा नित्य अव्यक्त है वह सर्व जड़ चेतनों के व्यक्त एवं अव्यक्त होते रहने पर भी नष्ट नहीं होता। उस अव्यक्त अक्षर को परमगति कहते हैं। वही मैं सर्वश्रेष्ठ गन्तव्य स्थान हूं जिसको प्राप्त होकर फिर जन्म के चक्कर में नहीं फंसते। हे अर्जुन ! जिस परमात्मा के अन्तर्गत सब भूत हैं, जिससे यह

सब संसार परिपूर्ण है वह सनातन अव्यक्त परमपुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य हैं। हे अर्जुन ! जिस समय शरीर छोड़ने से योगी जन जन्म-मरण के बन्धन में फंसते हैं या नहीं फंसते वह तुझे बताता हूं। प्रातःकाल, सूर्योदयकाल, दिन शुक्ल पक्ष, उत्तरायण के छः महीने (माघ से लेकर) इनमें शरीर छोड़ने वाले ब्रह्मवेत्ता कर्मसन्यासी पर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं, फिर नहीं जन्मते। सायंकाल रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन के छः महीने (श्रावण से लेकर) इनमें शरीर छोड़ने वाला ज्ञान-हीन सकाम कर्मयोगी स्वर्गफल को भोगकर पुनःशरीर धारण करता है। संसार में यों दो शुक्ल और कृष्ण मार्ग सदा से माने गये हैं। देवयान और पितृयान इन्हीं का नाम है। एवं

चलने वाला मुक्त हो जाता है, दूसरे मार्ग पर चलने वाला पुनः जन्म लेता है। हे अर्जुन ! इन दोनों मार्गों को जानने वाला योगी कभी भूलता नहीं है, अतएव तू भी सदा ऐसा कर्मयोगी बन। इस रहस्य को जानने वाला योगी, वेद जानने और यज्ञ, तप एवं दान करने से प्राप्त पुण्यफल से भी अधिक उत्कृष्ट होता है और सनातन ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

इति श्रीमद् भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्म बद्याया योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुन सम्वादे
अक्षर ब्रह्मयोग नाम अष्टमों अध्याय ॥८॥



* अथ आठवें अध्याय का महात्म्य *

श्री नारायण जी बोले—हे लक्ष्मी ! अब आठवें अध्याय का महात्म्य सुन । दक्षिण देश नर्वदा के तट पर एक नगर है उस में सुशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था उस के पास बहुत द्रव्य पदार्थ था और सन्तों की सेवा करने वाला था, बड़े यज्ञ करता था । उसने एक दिन एक सन्त से पूछा हे ऋषिजी मेरे सन्तान नहीं है ! तब ऋषिश्वर ने कहा, तू अजामेध यज्ञ कर । बकरा देवी को चढ़ा तुमको पुत्र देगी तब ब्राह्मण ने यज्ञ करने को एक बकरा मोल लिया, उसको स्नान करा मेवा खिलाया । जब उसको मारने लगा तब बकरा कह कह शब्द करके हंसा । तब ब्राह्मण ने पूछा, हे बकरे ! तू क्यों हंसता है । बकरे ने कहा, पिछले जन्म मेरे भी सन्तान नहीं थी, एक ब्राह्मण ने मुझे भी अजामेध यज्ञ करने को कहा था । सारी नगरी में बकरा ढूंढा परन्तु हाथ न लगा, ढूंढते२ एक

से मेरी पूजा करते हैं और सर्वरूप मुक्त (परमात्मा की) उपासना नाना रूप से करते हैं। क्योंकि मैं ही श्रौतकर्म हूं, पंचमहायज्ञादि स्मर्ति कर्म मैं हूं, पितरों को दिया जाने वाला अन्न, सब बनस्पतियां मंत्र, घृत, अग्नि, हवनरूप कर्म सब मैं हूं। मैं इस जगत का पिता, माता, धाता, पितामह सब हूं। जानने योग्य पवित्र ओंकार तथा ऋक, साम, यजु भी मैं हूं। कर्मफल, भरण करने वाला, स्वामी, शुभाशुभ कर्म का साक्षी वासस्थान, आश्रय, मित्र, उत्पत्ति, प्रलय, आधार, निधान और अविनाशी भी मैं हूं। गर्मी और वर्षा भी मैं ही करता और अविनाशी भी मैं हूं। गर्मी और वर्षा भी मैं ही हूं। व्यक्त और अव्यक्त भी मैं ही हूं। तीनों वेदों में वर्णित सकाम

कर्मों को करने वाले, सोमरसपायी, पापों से रहित हुए पुरुष यज्ञों से मेरी पूजा कर स्वर्ग की कामना करते हैं। याज्ञिक पुरुष पुण्यकर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग को प्राप्त हो स्वर्ग में दैवी भोगों को भोगते हैं। परन्तु उस विपुल स्वर्गस्थ भोगजाल को भोग चुकने पर स्वर्ग प्राप्ति के हेतु भूत पुण्य फल को समाप्त हो जाने पर इस मनुष्य लोक में आ जाते हैं। वैदिक कर्मों के करने वाले इस प्रकार आवागमन में रहते हैं। परन्तु जो जन मुझे ही सर्वतः प्राप्य मानते हुये मेरी भक्ति करते हैं। उन नित्य एकीभाव से कर्मों में लगे हुये नित्य निष्काम कर्म-योगियों के योग क्षेम का दायित्व मुझ पर है। सदा परमात्म में समाहित चित्त होकर रहने वाले पुरुष मोक्ष सुख को अनु

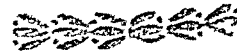
करते हैं वे आवागमन के चक्कर में नहीं रहते। और हे कुन्ती पुत्र! शास्त्र ज्ञान से हीन जो पुरुष दूसरे देवताओं की श्रद्धा से भक्ति करते हैं, वे भी मेरी ही पूजा करते हैं, परन्तु उनकी यह पूजा विधि पूर्वक नहीं है। क्योंकि उन देवताओं में भी ईश्वर ही स्थित है। सब श्रौत एवं स्मृति यज्ञों की रक्षा करने वाला और उनका फल देने वाला प्रभु ईश्वर रूप मैं ही हूं। परन्तु ये दूसरे देवताओं के पूजक भक्त लोग मेरे इस रूप को नहीं जानते। अतएव ठीक मार्ग से भ्रष्ट रहते हैं। नियम यह है कि देवताओं के पूजक उनसे देय फलों को प्राप्त करते हैं, पितृ याजक पितृ देय और जड़ चेतन पदार्थों के यथायोग्य सेवन करने वाले उनसे मिलने वाले फलों को प्राप्त होते हैं। इसी

प्रकार जो परमात्मा के सच्चे रूप की उपासना करते हैं
मोक्षरूप फल को प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य पत्र, पुष्प,
जल कुछ भी प्रेम से मुझे समर्पित करता है, उस
द्वारा भक्ति से समर्पित किया वह पत्रादि मैं ग्रहण करता
हे अर्जुन ! सब कर्म, खाना-पीना, यज्ञ करना, तप करना
कुछ भी है-मुझे समर्पित करके कर। ऐसा करने पर इन
के बन्धन भूत शुभाशुभ फलों से तू मुक्त रहेगा और
सन्यासरूप कर्म योग से युक्तात्मा तू मुक्त होकर परमात्मा
प्राप्त करेगा। स्थावर जंगमादि सब प्राणी मेरे लिये समान
मुझे कोई प्रिय अथवा द्वेष नहीं है। जो व्यक्ति भक्ति से
भजन करते हैं-केवल कर्त्तव्य बुद्धि से कर्म करते हैं वे

सदा स्मरण करते हैं और मैं भी सदा उनके अन्तःकरण में स्थित रहता हूं। यदि कोई अत्यन्त हीनाचार होकर भी प्रसिद्ध हो परन्तु फिर मेरी अनन्य भक्ति करने लगे तो वह सदाचारी ही है। उसका कर्म समीचीन (निष्काम कर्म करने के संकल्प के कारण) हो जाता है। वह व्यक्ति शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता। हे अर्जुन! जो माता पिता के पापी संस्कार वाले व्यक्ति हैं, गृह कार्य से अवकाश न पाने वाली स्त्रियां हैं, व्यापार में मग्न वैश्य हैं, नौकरी पेशा शूद्र हैं—वे सब निष्काम कर्मयोग रूप भक्ति से परमात्मा का आश्रय लेकर उत्तम गति को प्राप्त होते हैं। फिर पुण्य कर्मा

वेदों के विद्वान् ब्राह्मण व राजर्षि क्षत्रियों की तो बात ही क्या! इसलिये इस अनित्य, असुख देह को प्राप्त कर ईश्वर की आज्ञा में रह। ईश्वर में ही मन रमा, उसकी ही भक्ति कर, उसको ही पूजा कर उसे ही नमस्कार कर। इस प्रकार युक्त होकर तू परमात्मा को प्राप्त होगा।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे अक्षरब्रह्म योग नाम नवमों अध्याय ॥९॥



❋ अथ नवमें अध्याय का महात्म्य ❋

श्रीभगवान उवाच—हे लक्ष्मी ! तू श्रवण कर । दक्षिण देश में एक भाव सुशर्मा नाम शूद्र था, बड़ा पापी मांस मदिरा आहारी था । जुआ खेलता चोरी करता पर स्त्री रमता ऐसा पाप कर्मी था एक दिन मदिरा पान से तिसकी देह छूटी वह मर कर प्रेत हुआ एक बड़े वृक्ष पर रहने लगा । एक ब्राह्मण भी उसी नगरी में रहता था, दिन को भिक्षा मांग कर स्त्री को ला देवे, उसकी स्त्री बड़ी कुलैनी थी वह कभी किसी को भिक्षा न देती । समय पाकर इन दोनों ने प्राण त्यागे वह दोनों मर कर प्रेत हुये वह उसी वृक्ष के तले आ रहे जहाँ प्रेत रहता था, वहाँ रहते कुछ काल व्यतीत हुआ । एक दिन उसकी स्त्री पिशाचिनी ने कहा—हे पुरुष पिशाच ! तुमको कुछ पहिले जन्म की खबर हैं। तब पिशाच ने कहा सब खबर है । मैं पिछले जन्म में ब्राह्मण था तब पिशाचिनी ने कहा तैने पिछले जन्म क्या साधना करी थी जिस से तुमको पिछले

जन्म की खबर है तब उसने कहा, मैंने पिछले जन्म एक ब्राह्मण से अध्यात्म कर्म सुना था तब फिर पिशाचिनी ने कहा तैने और कौन साधना की थी और वह अध्यात्म कर्म कौन है जिसके सुनने से तुझे पिछले जन्म की खबर रही। पिशाच ने कहा मैंने और कोई पुराय नहीं किया। गीताजी का श्लोक श्रवण किया है उसका प्रयोजन यह है, एक समय अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से तीन बात पूछीं जो गीताजी के नवम अध्याय में लिखी हैं वह तीन बात पिशाचिनी ने पिशाच से श्रवण करी, इन बातों के सुनते ही एक प्रेत वृक्ष से निकला उसने कहा री पिशाचिनी यह बात फिर कहो जो अब कह रही थी। पिशाचिनी ने कहा तू कौन है मैं तुझे नहीं सुनाती मैं अपने भर्ता से पूछती हूँ। वह ब्राह्मण कौन था। वह कर्म कौन था, जिससे पिछले जन्म की खबर रही इन बातों के सुनते ही प्रेत देही छूटी तब ब्राह्मण ने कहा हे साधु एक श्लोक गीता का है जिसके सुनने से पिशाच और पिशाचिनी की देह छूटी तत्काल देवमार्ग में

देवताओं ने रोक लिया। कहा तुम ने ऐसे कौन उग्र पुण्य किये जिनके करने से इतनी जल्दी वैकुण्ठ को चले हो, तीर्थ, व्रत, तपस्या, दान, पुण्य ऐसा कोई नहीं हुआ जिसका यह फल तुमको मिला है। श्रीनारायणजी की भक्ति नहीं करी किस करनी के बल से वैकुण्ठ को जाते हो। तब उन्होंने कहा एक ब्राह्मण के मुख से श्रीगीताजी का अर्ध श्लोक श्रवण करा है, तिसके प्रताप से वैकुण्ठ को जाते हैं, तब देवताओं ने सुनके कहा श्रीगीताजी का ऐसा प्रताप है जिसके आधे श्लोक श्रवण से ऐसे जीव और वैकुण्ठवासी हुए हैं वह तीनों जा वैकुण्ठ में प्राप्त हुये। श्री नारायणजी ने कहा हे लक्ष्मी! यह नवम अध्याय का महात्म्य है जो तूने श्रवण किया है।

इति श्रीपद्म पुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्तरा खण्डे गीता महात्म्य नाम नवमों अध्याय सम्पूर्णम ॥९॥



* अथ दशमोऽध्याय *

विभूति योग

भगवान श्रीकृष्णजी ने कहा—"हे महाबाहु अर्जुन ! तुम मेरी बात जिस प्रीति से सुन रहे हो उसे देखते हुये तुम्हारे हित की इच्छा से मैं तुम्हें तत्त्व की बात और बताता हूं, सुनों ! देवता और वेदवेत्ता महर्षियों का भी मैं कारण हूं । वे मेरे सामर्थ्य को नहीं जानते । जो मुझको कारण रहित और अजन्मा सब लोकों का महेश्वर करके मानता है वह पंडित पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाता है । निश्चय करने की शक्ति, तत्त्वज्ञान, विवेक, क्षमा, सत्य, इन्द्रियों पर विजय, सुखदुःख, उत्पत्ति, प्रलय, भय, अभय, अहिंसा, सुख-दुःखादि

से आलोमित हो उठता है।" अर्जुन यह सब सुनकर बोला—भगवान् ! आपको (ईश्वर को) सब ऋषि, महर्षि, नारद भी, असित, देवल, महर्षि व्यास और आप स्वयं भी परमब्रह्म, परमधाम, सनातन दिव्य पुरुष, देवों के भी आदि, अजन्मा और सर्वव्यापी बताते हैं। हे केशव ! आप जो कुछ कहते हैं मैं उस सब को सत्य मानता हूं। देव-दानव कोई भी आपके स्वरूप को नहीं जानता। हे पुरुषोत्तम ! हे भूतोत्पादक ! हे भूतनियन्ता ! देवाधिदेव ! जगत्पालक ! साक्षात् आपही (अन्य कोई नहीं) अपने आपको जानते हैं। आपही अपने दिव्य नाना रूपों को पूरी तरह बना सकते हैं, जिन रूपों द्वारा आप संसार में सर्वत्र व्याप्त हैं। हे अद्भुत सामर्थ्य वाले भगवन् ! सदा

स्मरण करके मैं आपको कैसे जानूं ? और आपका किस किस रूप में चिन्तन करूं। हे जनार्दन ! अपने सामर्थ्य और नानास्वरूप विभूति को विस्तार से कहिये, मैं सुन सुन कर अघाता नहीं हूं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले—हे कुरु श्रेष्ठ ! यों तो मेरे विस्तार का अन्त नहीं है, परन्तु अपने मुख्य मुख्य स्वरूप मैं अब तुझे बताता हूं। हे निद्राजयी। अर्जुन! सब प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित मैं सब का आत्मा हूं। सब भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूं। सब प्राणियों का उद्भव मुझ से होता है, मुझ (ईश्वर) में ही वे पलते हैं और अन्त में लीन भी परमेश्वर में ही होते हैं। यह कह कर परमेश्वर के विविध रूपों का यों वर्णन किया कि अदिति के

बारह पुत्र, बारह आदित्यों में विष्णुनामक आदित्य हूं। प्रकाशमान् पुत्र अग्नि आदियों में प्रचण्ड ज्योति सूर्य हूं, वायु देवताओं में मरीचि विद्युद्गर्भा वायु हूं। वेदों से सामवेद, देवों में इन्द्र, इन्द्रियों में मन और प्राणियों में चेतन्ता हूं। ग्यारह रुद्रों में शंकर, यक्ष राक्षसों से धनेश कुबेर आठ वस्तुओं में अग्नि और पर्वतों में सुमेरु हूं। हे अर्जुन पुरोहितों में देवताओं का मुख्य पुरोहित बृहस्पति हूं सेनापतियों में स्वामिकार्तिक और जलाशयों में समुद्र हूं। महर्षियों में भृगु, वचनों में एकाक्षर ओंकार; सब यज्ञों में जप यज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय हूं। सब वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूं।

घोड़ों में, अमृत से उत्पन्न उच्चैः श्रवा, हाथियों में ऐरावत और मनुष्यों में मुझे राजा जान। शस्त्रों में मैं वज्र, गायों में कामधेनु, शास्त्रोक्त रीति से सन्तान की उत्पत्ति का हेतु कामदेव और सर्पों में वासुक हूं। फणी नागों में शेषनाग, जलचरों में वरुण, पितरों में अर्यमा और शासन करने वालों में यमराज हूं। दैत्यों में प्रह्लाद, गिनती करने वालों में समय, वन्य पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरुड़, पवित्र करने वालों में वायु; शस्त्रधारियों में राम, मछलियों में मगरमच्छ, और नदियों में गंगा हूं। सृष्टियों का आदि, मध्य एवं अन्त मैं ही हूं। विद्याओं में तत्व निर्णय करने वाली अध्यात्म विद्या मैं ही हूं। अक्षरों में आदि अक्षर अकार, समासों में उभयपदार्थ प्रधान

द्वन्द्व मैं हूं। अक्षयकाल और विराटस्वरूप सब का धाता मैं ही हूं। सर्वहारी मृत्यु और उत्पन्न होनें वालों का उत्पत्ति कारण भी मैं हूं स्त्रियों में वर्तमान, कीर्ति, शरीर सौन्दर्य, मधुरावाणी, स्मरणशक्ति, श्रुतार्थ धारण शक्ति मेधा, धैर्य और क्षमा मैं ही हूँ। गीतियों में वृहत्साम, छन्दों गायत्री, महीनों में मार्गशीर्ष का महीना, ऋतुओं में वसन्त ऋतु मैं हूं। छल करने वालों में जुआ, प्रभाव शालियों का प्रभाव, जीतने वालों की विजय, व्यवसायियों का उद्यम, सात्विक पुरुषों का सात्विक भाव, यादवों में वासुदेव, पाण्डवों में धनञ्जय, मुनियों में वेद-व्यास, कवियों में शुक्राचार्य हूं। दमनकारियों का हेतुभूत और दण्ड, जीतने की इच्छा रखने वालों की जयहेतु नीति हूं।

रहस्यों में रहस्य का कारण भूतवाणी और ज्ञानियों का ज्ञान हूं। हे अर्जुन! चराचर जगत् का बीज भी मैं ही हूं। कोई भी ऐसा चर-अचर पदार्थ नहीं है, जो मेरे बिना हो। इसलिये सब कुछ मेरा ही स्वरूप है। हे परंतप! मेरे दिव्य स्वरूपों का अन्त नहीं है, मैंने यह जो विस्तार बताया है वह तो नाममात्र ही कहा है। हे अर्जुन! जो प्राणी, धनधान्यादि समृद्धियुक्त, राज्यादि ऐश्वर्य युक्त अथवा बलशक्ति सम्पन्न है, उस सबको मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुई जान अथवा यह सब जानने से मुझे क्या प्रयोजन! मैं अपने एक अंश से इस सारे जगत् में व्याप्त हूं।

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुन सम्वादे विभूतियोग-नाम दसमोऽध्याय ॥१०॥

* अथ दसवें अध्याय का महात्म्य *

श्रीनारायण उवाच—हे लक्ष्मी ! अब दसवें अध्याय का महात्म्य कहता हूँ तू श्रवण कर । जिसके सुनने से महापापियों की गति हो । बनारस नगर में एक धीरजी नाम का ब्राह्मण रहता था । धर्मात्मा हरि भक्त एक दिन विश्वेश्वर महादेवजी के दर्शन को जाता था । गर्मी की ऋतु थी उसको धूप लगी घबराया उसका दिल घटने लगा अधाली खाकर मन्दिर के निकट गिर पड़ा । इतने में भृङ्गी नाम गण आया । देखा तो ब्राह्मण अचेत मूर्छित पड़ा है उसने जाकर शिवजी से कहा हे महादेवजी एक ब्राह्मण आपके दर्शन को आया था, वह मूर्छा में पड़ा है । महादेवजी सुन चुपकर रहे । फिर उस गण ने ब्राह्मण को देखा वह मरा पड़ा है । फिर जाकर कहा, हे स्वामिन यह चरित्र मैंने देखा है इसने कौन पुण्य किया जिससे भली जगह मृत्यु पाई हैं । चारों बात इसकी भली आ बनी हैं । एक बनारस क्षेत्र श्रीकाशीजी, गङ्गाजी का स्नान सन्तों

का और विश्वेश्वर जी का अर्जुन, अन्न का छोड़ना एकादशी का दिन, यह बात कह सुनाओ इसने क्या पुण्य किया था तब महादेवजी ने कहा है भृङ्गी इसके पिछले जन्म की खबर मैं कहता हूँ सो सुन। एक समय कैलाश पर्वत पर (गौरी) पार्वती और हम बैठे थे। गण भी हमारे पास थे फुलवाड़ी की शोभा देख रहे थे! एक हंस मेरे दर्शन को आया, वह ब्रह्मा का वाहन था ब्रह्मलोक से मानसरोवर को जाता था, उस सरोवर में सुन्दर कमल फूले थे एक कमल को लांघने तथा उसका पछीवां पड़ा वह हंस अचेत हो काला हो गया आकाश से गिरा तब उसी समय उसी मार्ग में एक गण और आया, हंस आपके दर्शन को आया था तो श्याम होकर गिर पड़ा है, गण मेरी आज्ञा से हंस को ले आये हमने पूछा हे हंस! तू श्याम वर्ण क्यों हुआ हंस ने कहा हे प्रभुजी मैं आपके दर्शन को आया था मान सरोवर में कमल फूले थे मैं उनको लांघकर आया इससे मेरी देह श्याम हो गई आकाश से गिर पड़ा

कारण जानता नहीं क्या हुआ है, यह सुनकर शिवजी हंसे आकाश वाणी हुई, कि हे शम्भूजी । आप क्या सोचते हैं इस हंस का प्रसङ्ग मैं कह सुनाता हूं तब मैंने कहा आकाशवाणी तुम मेरे पास आओ मैं तुमको देखूं तू कौन है, तब चतुर्भुज स्वरूप धारे श्याम सुन्दर एक पारखद आया । कहा हे स्वामिन ! तुम इस कमलनी से पूछो यह कमलनी सब कहेगी कमलनी ने कहा हे शिवजी महाराज ! मैं अपने पिछले जन्म की कथा कहती हूँ । पिछले जन्म में मैं अप्सरा थी नाम पद्मावती था, श्री गङ्गाजी के किनारे एक ब्राह्मण स्नान करके गीताजी के दसवें अध्याय का पाठ किया करता था । एक दिन राजा इन्द्र का आसन चला । इन्द्र ने देखा यह ब्राह्मण गीता पाठी है तब इन्द्र ने मुझे आज्ञा की तू जाके उस ब्राह्मण की तपस्या भङ्ग कर । आज्ञा पाकर उस ब्राह्मण के पास गई जाकर देखा वह ब्राह्मण एकाँत में बैठा था अचानक ही मेरी उस ब्राह्मण से भेंट हुई मेरे अङ्ग से अङ्ग लगा, उस ब्राह्मण ने मुझे शाप

दिया । कहा है पापिनी ! कमलनी हो उसी समय मैं कमलनी हुई और जै
सर्प के अङ्ग हैं वैसे तेरे भी पांच अङ्ग होंगे दो कमल चरणों के दो कम
हाथों के एक कमल मुख की जगह । उसी समय में कमलनी हो गई ह
मानसरोवर में साठ हज़ार भँवरा रहता है सो मेरी सुगन्धि से तृप्त हुए रह
हैं यह बात कही नहीं जाती मेरा प्रकाश क्यों हो रहा है जो पक्षी मेरे ऊ
से लांघता है भस्म हो जाता है । कमलनी ने कहा हे हंस तू कौन है ! य
क्यों आया है ? हंस ने कहा हम चार हंस हैं ब्रह्मा के वाहन तिन में एक मैं
मानसरोवर के मोती चुगने की आज्ञा हुई थी वहां को जाता था मार्ग
मैंने कहा शिवजी का दर्शन करता चल । तेरे ऊपर से लांघा तो श
का काला हो गया आकाश से गिर पड़ा अब तू अपना वृतान्त कह कमल
ने कहा, मैं पहले एक ब्राह्मण के घर कन्या थी मैंने एक करवाई
बच्चा पाला था वह बड़ी अच्छी बोली बोलता था मैं तिसको पढ़ाया कर

थी एक दिन मेरा भर्त्तार आया मैंने उठकर उसका आदर न किया उसने कहा तू उठकर रसाई कर मैं उसके लालच से न उठी। बहुत समय लगा तो भर्त्तार ने शाप दिया तू कामिनी हो उसकी सुध-बुध-मुझको अब तक है, पर वह गीता के दसवें अध्याय का पाठ किया करता था मैंने भी कंठ किया था। अब मैं तिसका पाठ करती हूँ उसी से मेरा तेज है यह पाठ का फल है! हँस ने कहा फिर क्या उपाय करें जिससे मेरा श्यामवर्ण से श्वेत होवे और तू इस कमलिनी की देह से छूट देव देही पावे तब कमलिनी ने कहा, कोई गीता के दसवें अध्याय का पाठ सुनावे तब उद्धार होगा, तब एक ब्राह्मण ने उसे सरोवर में स्नान कर शालिग्राम का पूजन कर दसवें अध्याय गीता का पाठ किया, उस हँस और कमलिनी ने सुना तो तत्काल उनका उद्धार हो गया, हंस श्वेत हुआ कमलिनी देवकन्या हुई। दोनों ने हाथ जोड़कर नम्र होकर ब्राह्मण को नमस्कार करा और कहा तुम धन्य हो जो हमको कृतार्थ किया, तब ब्राह्मण ने पूछा यह क्या

हुआ, हंस और कमलिनी ने पिछली वार्त्ता कह सुनाई और जहां आपके पाठ के सुनने से हमारी कल्याण हुई है हमको आशीर्वाद दो कृतार्थ रूप होकर दोनो देवलोक को प्राप्त हुए श्रीनारायण जी कहते हैं हे लक्ष्मी यह दसवें अध्याय का महात्म्य है जो तूने सुना है।

इति श्रीपद्म पुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्तरा खण्डे गीता महात्म्य नाम



* अथ एकदशोऽध्याय *

विश्वरूप दर्शन योग

इस प्रकार भगवान् के वचन सुनकर अर्जुन बोला—"हे भगवान्! मुझ पर कृपा करने के लिये आपने जो परम गोपनीय अध्यात्म उपदेश दिया है, उससे मेरा अज्ञान नष्ट होगया है।

न्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्ध, सब आपको देख-देखकर आश्चर्य
कर रहे हैं। आपके अनेक मुख, नेत्र, बाहु, जंघा, पांव, पेट,
दाढ़ वाले इस भयङ्कर रूप को देखकर तो सब लोग और मैं
भी व्यथ हूं। यह आपका आकाश चुम्बी, अनेक वर्ण, प्रदीप्त
खुले मुंह वाला, प्रकाशमान और बड़ी-बड़ी आंखों वाला रूप
देखकर मैं भयभीत हूं, मुझे धैर्य और शान्ति नहीं है। विक-
राल दाढ़ वाले, प्रलय काल की अग्नि के सदृश आपके मुखों
को देखकर मैं चकरा गया हूं। बेचैन हूं। हे जग निवास
आप प्रसन्न हों और धृतराष्ट्र के ये सब पुत्र, सब राजाओं
समेत, भीष्म द्रोण, कर्ण, हमारे साथी सब योद्धा भी शीघ्र
शीघ्र आपके भयङ्कर मुखों में धंसे जा रहे हैं। किसी किसी के

तो पिसे हुये सिर आपके दांतों में फंसे दीख पड़ते हैं। जैसे नदियों के अनेक जलप्रवाह सब के सब समुद्र की ओर ही बहते हैं वैसेही यह सब योद्धा आपके प्रदीप्त मुखोंमें ही प्रविष्ट हो रहे हैं। जैसे पतङ्ग प्रज्वलित अग्नि में ही गिरकर नष्ट होता है, वैसे ही सब लोक द्रुतिगति से आपके मुख में ही प्रविष्ट हो रहे हैं और आप प्रज्वलित मुखों के द्वारा इनको खाते हुये खूब चाट रहे हैं। आपका उग्र तेज इस जगत् को भासित कर तपाता है। हेभगवान्! बताइये आप उग्ररूप वाले कौन हैं? आपको नमस्कार हो, प्रसन्न हूजिये। आपका तात्त्विक रूप मैं जानना चाहता हूं। आपकी प्रवृत्ति को मैं नहीं जानता।" श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन को अपने इस उग्ररूप की व्याख्या करते हुए

बताया—"मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूं। जो योद्धा सेनाओं में स्थित हैं, वे तेरे युद्ध न करने पर भी न रहेंगे—इनका नाश तो अवश्यम्भावी है। इसलिये अर्जुन! कमर कस, कीर्ति कमा, शत्रुओं को जीतकर समृद्ध राज्य का भोग करना। इनका नाश तो मेरे द्वारा हो ही चुका है। तू केवल निमित्त तो बन। द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण तथा अन्य वीर योद्धा मेरे द्वारा मारे हुये हैं, उन्हें तू मार इसमें क्षोभ करने की आवश्यकता नहीं, युद्ध कर, युद्ध में वैरियों को जीतेगा।" सञ्जय ने बताया कि हे राजन्! भगवान् कृष्ण की यह वाणी सुनकर अर्जुन ने हाथ जोड़ लिये। वह कांपता हुआ, डरता हुआ कृष्ण को प्रणाम् कर बोला—"हे अन्तर्यामिन्।

आपके कीर्तन से जो लोग प्रसन्न और दत्तचित्त होते हैं, वह ठीक ही है। राक्षस डरकर भागते हैं। सिद्ध लोग नमस्कार करते हैं। आप ब्रह्मा के भी आदिकर्त्ता और बड़े हैं फिर आपको नमस्कार कैसे न करें। हे अन्नत! देवेश! जगन्निवास! सत असत् और इनसे भी उत्कृष्ट जो कुछ है वह आप ही हैं। आप आदिदेव सनातन पुरुष हैं। इस जगत् के परम आश्रय, जानने योग्य और प्रत्यक्ष उत्कृष्ट हैं आपके सारा जगत् नाना रूप होने के कारण व्याप्त है। वायु, यम, अग्नि, वरुण चन्द्र और ब्रह्मा सब आपके ही रूप हैं। आपको बारबार हजार बार नमस्कार हो। आपको आगे पीछे सब ओर नमस्कार हो। आप अनन्त पराक्रमशाली अति विक्रमशाली हैं। आप

सब मे व्याप्त अतएव सर्वरूप हैं। आपको मित्र मानकर आपकी इस महिमा को न जानते हुये भूल से या प्रेम से कभी कृष्ण, यादव, सखा आदि नामों से जो सम्बोधन किया है और खान-पान शैय्या, आसन, भोजनादि के अवसर पर हंसी-हंसी में आपका जो अपमान सबके सन्मुख अथवा अकेले में किया है, अमित प्रभावशाली आपसे मैं उसके लिये क्षमा मांगता हूं। हे विश्वेश्वर! आप इस चराचर लोक के जनक, पूज्य और गुरु हैं। तीनों लोकों में आपके बराबर भी कोई नहीं, अधिक तो कैसे हो। इसलिये आपके चरणों में शरीर रखकर, आप स्मृति योग्य परमेश्वर को प्रसन्न होने के लिये प्रार्थना करता हूं। हे देव! जैसे पिता पुत्र के, सखा स्वसखा

के और पति स्त्री के अपराधों को क्षमा कर देता है वैसे मेरे अपराधों को क्षमा करें। हे जगन्निवास ! देवाधि देव आपके इस अदृष्ट पूर्व रूप को देखकर मैं प्रसन्न हूं। मन भ्रम से व्याकुल भी है। अतएव प्रसन्न होकर मुझे अपना पहला रूप दिखाइये। मुकुट, गदा और चक्र धारी जो आपका रूप है वही मैं देखना चाहता हूं। हे सहस्रबाहु ! आप उसी चतुर्भुज रूप में प्रकट हूजिये।" अर्जुन की इस प्रार्थना पर भगवान् कृष्ण ने कहा—"हे अर्जुन ! मैंने प्रसन्न होकर अपने प्रभाव से तुझे उत्कृष्ट, तेजोरूप, अनन्त, सबका आदिभूत रूप दिखाया है—इसे तेरे सिवा और किसी ने नहीं देखा है। मृत्यु लोक में वेद पढ़ने, यज्ञ, अध्ययन

दान करने, नाना क्रियाओं व उग्र तपों से भी मुझे इस रूप में नहीं देख सकता। मेरे इस डरावने रूप को देखकर डरने और मूर्छित होने की आवश्यकता नहीं। ले, मेरा वह पहला रूप देख।" संजय बोला—"कृष्ण भगवान् ने अर्जुन से यह कहकर फिर अपना रूप दिखाया और सौम्य मूर्ति होकर अर्जुन को बार बार धीरज बंधाया। तब अर्जुन बोला—'हे भगवन्! आपके इस शान्त मनुष्य रूप को देखकर, मैं होश में आया हूं और मुझे शान्ति मिली है।

भगवान् कृष्ण ने फिर बताया—"हे अर्जुन! मेरा यह अति दुर्लभ जो रूप तूने देखा है उसके दर्शन के लिये देवता भी सदा लालायित रहते हैं। जिस रूप में तूने मुझे देख

है, वह रूप तो वेद, तप, दान व यज्ञ की साधना से भी देखने को नहीं मिलता। परन्तु! हे परन्तप अनन्य भक्ति से मुझे इस रूप में देखा और जाना जा सकता है तथा मुझ में लीन हुआ जा सकता है। जो पुरुष सब कुछ मेरा समझता हुआ, यज्ञ, दान और तप आदि कर्तव्य कर्म करता है, मेरा भक्त है, किसी प्राणी से द्वेष नहीं रखता, सर्वथ आसक्ति रहित है, वह मुझ परमेश्वर को प्राप्त होता है।

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे विभूतियोग-नाम एकादशोऽध्याय ॥११॥



❀ अथ ग्यारहवें अध्याय का महात्म्य ❀

श्रीनारायणोवाच—हे लक्ष्मी अब ग्यारहवें अध्याय का महात्म्य सुन तुङभद्रा नामक एक नगर था, जिसके राजा का नाम सुखानन्द था वहाँ श्री लक्ष्मीनारायण की सेवा बहुत लोग करते थे एक ब्राह्मण बड़ा धनपात्र विद्वान् पण्डित रहता था और उस ब्राह्मण का नियम था नित्य गीता के ग्यारवें अध्याय का पाठ करना और राजा भी वहां नित्य लक्ष्मीनारायण की सेवा किया करता था और पाठ भी नित्य श्रवण करता था ऐसे ही सेवा करते बहुत काल व्यतीत हुए एक दिन राजा मन्दिर से घर को जाता था उस दिन बहुत देशान्तर फिरते २ अतीत उस नगर में आये अतीतों ने राजा से कोई जगह मांगी कहा हे राजन् हम कई दिन रहेंगे हमें जगह दीजे। राजा ने बड़ी हवेली खुलवा दी वहां अतीत रहे, राजा ने सीधा दिया, रसोई कर अतीत बड़े प्रसन्न हुए प्रातःकाल राजा

उनके दर्शन को गये राजा का बेटा भी उनके साथ था कई मित्र साथ थे, राजा हवेली में आया जो महन्त था उसके साथ राजा बातचीत करने लगा और राजा का पुत्र खेलने लगा वहां एक प्रेत रहता था उस प्रेत ने राजा के पुत्र को मारा चाकरों ने राजा को खबर की। हे राजा जी ! कुँवर को प्रेत ने मार डाला है तुम निश्चित बैठे हो राजा यद्यपि सेवा करता, कथा श्रवण करता था। परन्तु पुत्र के मोह से राजा के मन में दुर्बुद्धि आ गई राजा बोला हे सन्तजी आपके दर्शन का मुझको बहुत फल मिला है। एक पुत्र था सो भी प्रेत ने मार लिया। तब ब्राह्मण ने कहा हे राजा जी चलो देखें कहां है तेरा पुत्र ? राजा ब्राह्मण महन्त सभी वहां आये जहाँ राजकुमार मरा पड़ा था। तब ब्राह्मण ने कहा अरे प्रेत ! तू इस लड़के पर कृपा दृष्टि कर जो यह लड़का जी उठे और मैं तुझे गीता के ग्यारहवें अध्याय का पाठ सुनाता हूँ तू श्रवण कर इससे तेरा कल्याण होगा जितने जीव पीछे मारे हैं तिनका भी उद्धार होग अब

तू अपने जन्म की बात कहा क्यों कर प्रेत हुआ है तिसके पीछे तेरा उद्धार करूँगा । तब प्रेत बोला मैं पूर्व जन्म में ब्राह्मण था, इस ग्राम के बाहर हल जोतता था वहां एक दुर्बल ब्राह्मण आया था, सो इस खेत में गिर पड़ा उसके अङ्गों से रुधिर निकला एक चील ने उसका मांस नोंच खाया मैं बैठे देखता था मेरे मन में दया न आई कि इस ब्राह्मण को छुड़ा दूँ इतने में एक और ब्राह्मण आया उसने देखा एक दुर्बल रोगी ब्राह्मण गिर पड़ा है चील नोच २ मांस खाती है उसने देखकर मुझे कहा अरे हल जोतनेवाले ब्राह्मण तू यज्ञोपवीत धारण किये बैठा है कर्म तो तेरे चाण्डल के हैं निर्दयी तेरे खेत के पास ब्राह्मण का मांस चीलें तोड़ २ खाती हैं क्या तू आंखों से अन्धा है इस कारण से तू बड़ा पापी है यह तीनों अपकर्मी नरक को जाते हैं एक तो चोर लूटता मारता होवे और साक्षी होकर भाग जावे दूसरा रोगी हो तिसकी सुध न लेवे और किसी को भूत लगा हो यह छुड़ाना जानता हो छुड़ावे नहीं यह तीनों पापी नरक को

जाते हैं जो सर्वजीवों पर सहायता और दया करते हैं तिनको अश्वमेध
का फल प्राप्त होता है, सो मेरे शाप से तू प्रेत योनि पायेगा तब मैंने उ
चरण पकड़ कर कहा मेरा उद्धार कैसे होवेगा तब ब्राह्मण ने कहा जब
कोई गीता के ग्यारहवें अध्याय का पाठ सुनावेगा तब तेरा उद्धार होगा प्रे
ने अपनी कथा सुनाई तब ब्राह्मण ने राजा से पूछा राजा ने कहा इसका
कीजिए और मेरे बेटे को जीवित करें तब ब्राह्मण ने गीता के ग्यारहवें
का पाठ किया और प्रेत पर जल छिड़का तत्काल प्रेत की देह से छूटकर
देही पाई, उसने पहले जो कई जीव खाये हुए थे तिनका भी उद्धार हुआ
का पुत्र सावधान हुआ, श्यामसुन्दर चतुर्भुज रूप होकर खड़े हो गये।
से विमान आए, तब प्रेत बोला—हे राजा अपने पुत्र को मिल जब वह मि
लगा तब वह बोला हे राजा जिसके कुल में एक वैष्णव होवे उसके कई
का उद्धार होता है तू बड़ा वैष्णव है तब राजा ने मोह कर कहा हे पुत्र तू

को मिल, पुत्र बोला पुत्र तू किसको कहता है मैं कई बार तेरा पुत्र हुआ; कई बार तेरा पिता भया यह प्रेत धन्य है जिसने मुझको मारा और श्रीगीताजी के ग्यारहवें अध्याय का पाठ श्रवण कर मैं कृतार्थ हुआ हूँ फिर राजा ने कहा पुत्र तू मेरे घर में एक ही पुत्र था मेरी अब कौन गति करेगा। और कोई सन्तान नहीं तब पुत्र नें कहा हे राजा जिस कुल में एक वैष्णव होवे उसका उद्धार होता है। पिता तू चिन्ता न कर अब मैं नारायणजी परायण हुआ हूँ और जब मैं श्री नारायणजी का दर्शन करूँगा तब तेरे कुल का उद्धार होगा इकीस कुल तेरी उद्धरेंगी तब राजा ने अच्छा सिधारो वह सब विमान पर बैठकर वैकुण्ठ में गये। तब उस ब्राह्मण से राजा ने ग्यारहवें अध्याय का पाठ श्रवण किया। मन में कहा अब पुत्र, पुत्री कोई नहीं। विरक्त होकर गीता का पाठ किया करें तुलसी में जल डाला करें ब्राह्मण साधू चले गये। राजा भी परम

भक्ति का अधिकारी हुआ। श्रीनारायणजी कहते हैं—हे लक्ष्मी! यह ग्यारहवें अध्याय का महात्म्य है जो तूने श्रवण किया।

॥ इति श्री पद्मपुराणे धरणीधर सम्वादे उत्तराखण्डे गीता महात्म्य नाम एकादशोऽध्यायः सम्पूर्णम् ॥११॥

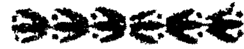
* अथ द्वादशोऽध्याय *

भक्तियोग

भगवान् के वचन सुनकर अर्जुन ने पूछा—"भगवान्! जो अनन्य प्रेमी भक्त जन इस प्रकार निरन्तर आपके भजन ध्यान में लगे हुए विश्वरूप आपकी उपासना करते हैं और दूसरे जो अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार की उपासना करते हैं—इन दोनों प्रकार के भक्तों में अति उत्तम योगवेत्ता

श्रद्धालु कहकर, मुझे अपना सब कुछ मानते हुए, इस धर्म्म अमृत वचन का यथा तथा पालन करते हैं वे भक्त मुझे अतिशय प्रिय हैं।

॥ इति श्री भगवद् गीता सूपनिषदसु विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे भक्तियोगो नाम द्वादशो अध्याय ॥१२॥



* अथ बारहवें अध्याय का महात्म्य *

श्री भगवानोवच—हे लक्ष्मी! अब बारहवें अध्याय का महात्म्य सुन दक्षिण देश में एक सुखानंद नाम का राजा रहता था तिसके नगर में एक उतङ्ग नाम लम्पट रहता था। एक गणिका से उसकी प्रीति थी वह दोनों एक देवी के मन्दिर में जाके मदिरा पान किया करते, मांस खाते, भोग भोगते, जो कोई पूछे तुम यहाँ क्या करते हो तो कहते हम यहां वैसे ही रहते हैं देवी की सेवा करते हैं, झूठ कह देते उसी मन्दिर में एक ब्राह्मण देवी की सेवा करता था एक दिन उस

ब्राह्मण ने देवी की स्तुति करी देवी प्रसन्न हुई। कहा वर मांग जो मांगेगा सो दूँगी फिर उसने धन संतान सुख मांगा देवी ने कहा हे ब्राह्मण अवश्य कर तुझे धन संतान सुख देऊँगी पर एक बात कर पहिले इन दोनों का उद्धार कर ले ऐसा उपाय कर जिससे इन दोनों का उद्धार होवे तो ब्राह्मण ने नमस्कार किया और अपने गुरु के पास आकर कहा हे गुरु जी ! मैंने देवी की स्तुति करी थी सो प्रसन्न हुई धन संतान दी है, पर पहले इन दोनों का उद्धार होवे तब गुरु ने कहा हे ब्राह्मण चल श्रीनारायणजी से पूछें तब दोनों ने श्रीनारायणजी का तप किया तीर्थ व्रत किए भगवान जी प्रसन्न हुए आकाश वाणी हुई तब श्री भगवानजी गरुड़ पर सवार होके आए और कहा, तेरी क्या कामना है पिछली बात कही देवी जी की भक्ति करी थी भगवती प्रसन्न हुई कहा धन संतान देती हूँ पर दोनों का उद्धार कर जो किस तरह करके सो मैं जानता नहीं हूँ आप कृपा करके कहो उनका उद्धार किस प्रकार हो सकता है तब श्री नारायण जी ने कहा

हे ब्राह्मण गीता के बारहवें अध्याय का पाठ सुनावो तो उन दोनों का उद्धार होगा तब उस ब्राह्मण ने भगवान् की स्तुति कर धन्यवाद किया आशीर्वाद कह तुम्हारी जय हो। तब ब्राह्मण ने देवी के मन्दिर में भगवती की स्तुति करी तुम्हारी जय हो. तब देवी प्रसन्न भई कहा हे देवी जी ! श्री नारायण जी ने यह आज्ञा करी है, तब देवी ने कहा हे ब्राह्मण ! तू उनका पाठ सुना जिससे उनका उद्धार होवे तब दोनों गणिका और लम्पट को बैठाकर गीता के बारहवें अध्याय का पाठ सुनाया, सुनते ही उन दोनों की देह छूटी देव देही पाई और वैकुण्ठ को गये देख कर देवी प्रसन्न हुई। ब्राह्मण को कहा हे पण्डित आज से मेरा नाम वैष्णव देवी हुआ इस पाठ को सुन कर ऐसे अपकर्मी तर गए हैं इस नगरी का राज्य तुम को दिया इतना कह कर अन्तरध्यान हुई ब्राह्मण घर गया। उस राजा के सन्तान न थी राजा उस ब्राह्मण को बुला कर राज्य देकर आप तप को गया वन में विरक्त होकर और ब्राह्मण राज्य करने लगा श्रीनरायण

जी कहते हैं हे लक्ष्मी ! यह गीता के बारहवें अध्याय का महात्म्य है जो मैंने कहा और तूने सुना है !

॥ इति श्रीपद्म पुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्तरा खण्डे गीता महात्म्य ना द्वादशो अध्याय सम्पूर्णम ॥

* अथ त्रयोदशोऽध्याय *

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-विभाग योग

श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन को बताया—"हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! इस देह को क्षेत्र कहते हैं और इस शरीर को जानने वाला क्षेत्रज्ञ कहलाता है। समाक्षरूप से सब विश्व कर्मभूमि होने से क्षेत्र है ब्रह्माण्ड में ईश्वर ही विश्वरूप होने से क्षेत्र है और वही उसका नियन्ता ज्ञाता होने से क्षेत्रज्ञ भी है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है वह मेरा (ईश्वर का)

ही ज्ञान है। उस क्षेत्र का स्वरूप, प्रकार, उसके विकार, उसकी उत्पत्ति का कारण तथा उस क्षेत्रज्ञ का स्वरूप और उसका सामर्थ्य—यह सब संक्षेप से मैं बताता हूं—सुन! ऋषियों ने क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का तत्त्व बहुत प्रकार से समझाया है—नाना प्रकार के वेदमन्त्रों द्वारा उसकी व्याख्या की है। युक्तियुक्त, भली प्रकार निश्चित, ब्रह्मसूत्रों से भी उसकी व्याख्या की है। क्षेत्र का स्वरूप है—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का सूक्ष्म भाव; अहंकार बुद्धि, मूल प्रकृति, ग्यारह इन्द्रियां, इन्द्रियों के पांच विषय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध; इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख स्थूलदेह का पिंड चेतनता, धृति॥ क्षेत्रज्ञ के ज्ञान के साधन ये हैं:—अभिमान का

अभाव, दंम्भ का अभाव, प्राणीमात्र को किसी भी प्रका रन सताना, क्षमाभाव, मन-वाणी की सरलता, गुरु की सेवा, बाहर भीतर की बुद्धि, अन्तः करन की स्थिरता, समग्र शक्ति का निग्रह, भोगों में आसक्ति का अभाव, जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग, और दुख आदि दोषों का पुनः पुनः विचार, पुत्र स्त्री आदि में आसक्ति एवं ममता का अभावः इष्टानिष्ट में सम-चित्तताः मुझ विश्वरूप ईश्वर में दृढ़ भक्ति, एकान्त एवं सुद्ध देश का सेवन, मनुष्य समुदाय में, प्रेम का अभाव, नित्य अध्यात्म ज्ञान में स्थिति, तत्त्वज्ञान के लक्ष्य रूप ईश्वर को सर्वत्र देखना। यह सब ज्ञान के साधन होने से ज्ञान तथा इसके विपरीत अज्ञान हैं। वह क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ अब तुझे बताता हूं जिसे

जान कर पुरुष मोक्ष को पा लेता है। वह क्षेत्रज्ञ नित्य, परम-ब्रह्म अपरिच्छिन्न होने से न सत् (कार्य) है न असत् (कारण) है। उसकी सामर्थ्य यह है कि उसके हाथ-पैर सब ओर हैं, नेत्र सिर कान और मुंह भी सब ओर हैं—वह सारे विश्व में व्याप्त है। सब इन्द्रियों से रहित है—परन्तु सब इन्द्रियों के विषय से परिचित है। सब का भरण पोषण करने वाला है—पर आसक्ति रहित हैं; गुणों से अतीत पर गुणों को मांगने वाला है; सब भूतों के बाहर-भीतर है चर-अचर रूप भी है, सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है—समीप भी है—दूर भी है। आकाश की भांति एक रूप है-पर भूतों में पृथक् पृथक् दीखने से विभक्त भी है। वह विष्णु रूप से भूतों का भरण करने वाला, शुद्ध रूप से संहार करने

वाला और ब्रह्मारूप से उत्पन्न करने वाला है। ज्योतियों का भी ज्योति और अन्धकार से परे है। वह परमात्मा बोध-स्वरूप, जानने योग्य और तत्व ज्ञान से प्राप्त होने वाला सब के हृदय में स्थित है। हे अर्जुन! मैंने यह जो क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ का ज्ञान साधन और जानने योग्य क्षेत्रज्ञ का स्वरूप संक्षेप से बताया, मेरा भक्त इस सब को समझकर मुझ में लीन होने योग्य होती है। हे अर्जुन! प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा क्षेत्रज्ञ) इन दोनों को ही तू अनादि जान। राग द्वेषादिकार, त्रिगुणात्मक सब पदार्थ प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं पांच प्रकृति हो कार्य —अर्थात् शरीर के आरम्भिक पांच स्थूल भूतादि, महायादि कारणों के निर्माण की हुई है। और क्षेत्रज्ञ जीवात्मा सुख

सुखादि योग्य विषयो के अनुभव का हेतु है। प्रकृति में स्थित क्षेत्रज्ञ पुरुष ही प्रकृति से उत्पन्न भोगों को अनुभव करता है। प्रकृति में स्थित के कारण गुणों का संग ही जीवात्मा को अच्छी-बुरी योनि मिलने का कारण है। वास्तव में यह पुरुष इस देह में स्थिति हुआ भी शरीर से भिन्न, का अनुमति देने वाला, योषमिता, भागों का अनुभव करने वाला महेश्वर और परमात्मा कहा गया है। जो इस प्रकार पुरुष-प्रकृति और उसके गुणों को जान लेता है वह सब प्रकार से बर्तता हुआ भी फिर नहीं जन्मता। पुरुष को जानने के अनेक साधन हैं। कितने मनुष्य तो सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान से हृदय में देखते हैं। कोई ज्ञान योग द्वारा कितने ही निष्काम कर्म योग के ... को

दूसरे मन्द बुद्धि वाले पुरुष इस प्रकार जानने की समामर्थ्य रखते वे दूसरों से सुनकर ही उपासना करते हैं ये सुनकर साधना करने वाले भी संसार सागर को पार हो जाते हैं। हे अर्जुन! स्थावर जङ्गम जो भी कुछ उत्पन्न होता है वह क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के संयोजक से ही उत्पन्न होता है। इस विनाशी विपूर्व में सदा स्थिर रहने वाले अविनाशी परमात्मा को देखने वाला पुरुष ही सच्चा ज्ञानी है। वह पुरुष समभाव से स्थित हुए परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा अपने आप को नष्ट नहीं करता वह परमभक्ति को प्राप्त होता है। जो पुरुष सब कामों को प्रकृति द्वारा किये हुए समझता है और आत्मा को अकर्ता देखता है, वह तत्त्वज्ञानी है। यह जब पुरुष पृथक् पृथक् भूतों

को एक परमात्मा में स्थित अनुभव कर लेता है और उससे ही इनके विस्तार को समझ लेता है तब वह भी ब्रह्मीभूत हो जाता है। हे अर्जुन ! अनादि, और निर्गुण होने से यह अविनाशी परमात्मा, शरीर में स्थित हुआ भी वास्तव में न कुछ करता है न लिप्त होता है जैसा एक सूर्य इस सारे जगत् को प्रकाशित कर देता है। उसी प्रकार इस ब्रह्मांड सम्पूर्ण क्षेत्र एक आत्मा प्रकाशित करता है। इस प्रकार क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा प्रकृति और उनके विकारों से छूटने के उपाय को जो पुरुष ज्ञाननेत्रों जान लेते हैं, वे महात्मा जन पारब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे
भक्तियोगो नाम त्रयोदशो अध्याय ॥१३॥

* अथ तेरहवें अध्याय का महात्म्यं *

श्रीनारायणोवाच—हे लक्ष्मी ! अब तेरहवें अध्याय का महात्म्य सुन दक्षिण देश में हरिनाम नगर था वहां एक व्यभिचारिणी रहती थी व्यभिचार करती मांस मदिरा खाती थी एक दिन एक पुरुष से उसने वचन किया कि अमुक स्थान में तेरे पास आऊंगी तुम वहाँ चलो वह पुरुष किसी और वन में चला गया और वह स्त्री उसे ढूंढती २ हैरान हो गई पर मनुष्य न मिला वह भूलता फिरता था वह गणिका थक कर उसका रास्ता देखने लगी देखते २ ही सारा दिन व्यतीत हुआ प्रीतम न आया सांझ पड़ गई वह गणिका प्रीतम का नाम ले २ कर पुकारने लगी वृक्षों से पूछा इतने में वह पुरुष मिला दोनों बड़े प्रसन्न होकर बैठे। इतने में एक शेर आया, गणिका डरी, देख कर सिंह बोला अरी गणिका ! मैं तुझे खाऊंगा। वह बोली तू पहले अपने जन्म की बात कह तू कौन है ? तब सिंह बोला मैं पूर्व जन्म में ब्राह्मण था झूठ बोला करता था बड़ा लोभी था जुआ खेलता था तथा दूसरे का धन हर

लेता था एक दिन प्रभात के समय घर से उठ कर चला मार्ग में गिरते देह छूट गई यमों ने पकड़ लिया धर्मराज के पास ले गये देखते ही धर्मराज ने हुक्म दिया इसी घड़ी ब्राह्मण को सिंह का जन्म देदो। यह देह मुझे मिली है और हुक्म दिया जो प्राणी पापीदुराचारी हो उसे तू खाया कर जो साधू वैष्णव हरिभक्त हों उनके पास न जाना हे गणिका! मुझे धर्मराज की आज्ञा है तिनकी आज्ञा पाकर सिंह योनि में आया हूँ व्यभिचारिणी गणिका पापन है। इसलिए तुझको खाऊंगा इतनो कह गणिका को खा लिया, तब यम धर्मराज के पास गणिका को ले गये धर्मराज ने हुक्म दिया इसको चंडालिनी का जन्म देदो। श्री नारायण जी कहते है, हे लक्ष्मी उसने गणिका की देह त्याग चांडा-लिनी की देह पाई! कई दिन के पीछे एक दिन नर्वदा नदी के तट पर चली जाती थी। वहां क्या देखा कि एक साधू गीता के तेरहवें अध्याय का पाठ करता है उसने सुन लिया जब अध्याय पढ़ के भोग पाया तब चांडालिनी के प्रण छूट गये देव देही पाई आकाश से बिमान आये तिन पर बैठकर बैकुण्ठ

को चली साधू ने पूछा, अरी तूने कौनसा पुण्य किया जिसके करने से वैकुण्ठ को चली है। चांडालिनी ने कहा हे सन्त जी इस तेरे पाठ को श्रवण कर मैं देवलोक को चली हूँ तब पारषद को कहा, कोई ऐसा काम करो कि जिस सिंह ने मुझे पूर्व गणिका के जन्म में खाया था उसको भी साथ ले चलो। तब उस साधू से प्राथना की कि हे संत जी गीता जी के एक श्लोक के पाठ का फल उसके निमित देवो जो सिंह का उद्धार होवे तब उसने पाठ का फल दिया तत्काल उस सिंह की देह छूटी देव देहीं पाई दोनों बिमान पर चढ़ कर वैकुण्ठवासी हुए परमधाम को प्राप्त हुए। तब श्रीनारायण जी ने कहा हे लक्ष्मी ! यह तेरहवें अध्याय का महात्म्य है। प्रीत के साथ पढ़ने की बात का कुछ फल कहा नहीं जाता। अनजानपने से पढ़े तो भी मेरे परम धाम को प्राप्त होता है।

॥ इति श्री पद्मपुराणे सतीईश्वर सम्वादे उत्तराखण्डे गीता महात्म्य नाम त्रयोदशोऽध्यायः सम्पूर्णम् ॥१३॥



* अथ चतुर्दशोऽध्याय *

गुण त्रय विभाग योग

इसके बाद उपरान्त श्री भगवान् बोले—हे अर्जुन ! ज्ञानों अति उत्तम परमेश्वर विषयज्ञान को मैं फिर तुझे बताता हूं। इसको जानकर सब मुनि-जन इस संसार से छुटकर मुक्ति को प्राप्त हुये हैं। इस ज्ञान के अनुसार आचरण करने वाले पुरुष परमेश्वर के साथ एक रूप हो जाने के कारण सृष्टि के आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होते और प्रलय में भी क्लेश नहीं पाते। हे अर्जुन ! मैं त्रिगुणात्मिक प्रकृति में, जो सब भूतों की जन्म स्नाथ हैं, चेतन स्वरूप बीज की स्थापना करता हूं। हे अर्जुन !

पशु कीट आदि योनियों में जो शरीर उत्पन्न होते हैं उनकी योनि माता भी गुणात्मक प्रकृति है और बीज को स्थापित करने वाला पिता हूं प्रकृति के तीन गुणसत्व-रज और तम इस क्षेत्र में क्षेत्रज्ञ जीव को बांधे रहते हैं। इन तीन गुणों से मेंसत्व गुण निर्मल है और यह सुख और ज्ञान की आसक्ति से जीवात्मा को बांधता है। रजो गुण कामना और आसक्ति से उत्पन्न होता है और रागरूप है। यह जीव को कर्म एवं कर्मफल की आसक्ति से बाँधता है। हे अर्जुन! तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होता है, और शरीरियों को मोहने वाला है। यह जीवात्मा को प्रमाद (व्यर्थ चेष्टा) आलस्य और निद्रा द्वारा शरीर में बांधे रखता है—हे अर्जुन! इस प्रकार सत्व सुख में लगाता है।

रज कर्म में प्रवृत्ति करता है, और तमोगुण ज्ञान को ढककर प्रमाद में लगाता है। हे अर्जुन ! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्व गुण बढ़ता है, रजोगुण सत्व एवं तम को तथा तमोगुण सत्व एवं रज को दबाकर बढ़ते हैं। जब इस देह अन्तःकरण और इन्द्रियों में चेतनता और बोध शक्ति जाग्रित होती है तब सत्य गुण बढ़ा समझना चाहिये [जब रज बढ़ता है तो लोभ, चेष्टा, कर्मों को स्वार्थ बुद्धि से आराम, चंचलता और विषयों के प्रति लालसा बढ़ती है। और हे कुरुपुत्र ! तमो गुण के बढ़ने पर शरीर में चेतनता का अभाव, कर्म करने की प्रवृत्ति का न होना, व्यर्थ चेष्टा और निद्रादि मोह उत्पन्न होते हैं। सत्व गुण की अत्यन्त वृद्धि के समय

मरने वाला जीव ब्रह्म वेत्ताओं के शुद्ध वंश में उत्पन्न होता है। इसी प्रकार, जो गुण वृद्धि के समय मरने वाला कर्म निष्ठों का जन्म पाता है और तमोगुण बढ़ने पर मरने वाला कीट पशु आदि मूढ़ योनियों में उत्पन्न होता है। सात्विक निष्काम कर्म का फलसुख, ज्ञान आदि फल है, राजस कर्म काफल दुःख और तामस का फल अज्ञान कहा है। सत्व से ज्ञान, रज से लोभ, और तमो से प्रमाद, मोह और अज्ञान उत्पन्न होते हैं। सात्विक कर्म करने वाले निरन्तर प्राप्त अवस्था को प्राप्त करते हैं—रजो गुणी न उत्पन्न होते हैं न अधोगति को प्राप्त होते हैं। तामस पुरुष निरन्तर अधोगति को प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन! जब द्रष्टा साक्षी जवी तीनों गुणों से भिन्न किसी और को कर्त्ता

अनुभव नहीं करता गुण ही गुणों में वर्तते हैं, त्रिगुण-मयी प्रकृति से उत्पन्न अन्तः करण सहित इन्द्रियां अपने अपने विषयों में विचरती हैं ऐसा अनुभव करता है और तीनों गुणों से भिन्न परमात्मा को तत्त्व से जान लेता है। तो वह मुझ में लीन हो जाता है। यह पुरुष स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारण भूत तीनों गुणों को उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धा वस्था और सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हो, परमानन्द को प्राप्त होता है। भगवान् के इन वचनों को सुनकर अर्जुन ने पूछा—""हे प्रभु ! यह बताईये इन तीनों गुणों को लंघन करने वाले पुरुष के क्या लक्षण हैं; क्या क्या उसके आचरण होते है और वह किन उपायों से इन तीनों गुणों को लांघता है।" यह

पूछने पर भगवान् ने बताया—"जो पुरुष सत्व गुण के कार्यरूप प्रकाश को, (जो गुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को और तमोगुण के कार्यरूप मोह को भी न तो प्रवृत्ति होने पर बुरा समझता है और उनके हट जाने पर भी इनकी चाह करता है, साक्षीरूप होकर गुणों से विचलित नहीं होता, गुण ही बरतते हैं ऐसा समझकर परमात्मा में एकी भाव से स्थित होता है, दुःख सुख को समान समझने वाला, आत्मभाव में स्थित, पत्थर और सुवर्ण में प्रिय एवं अप्रिय में, निन्दा एवं स्तुति में तुल्य बुद्धि है; मानापमान शत्रु एवं मित्र समान समझता है और सब कर्मों में कर्त्तापन के अभिमान को छोड़े हुये है वह गुणातीत कहलाता है। एक निष्ठ भक्ति गुणों को अतीत करने का साधन

है । ब्रह्म, अमृत अव्यय, शाश्वत धर्म, और एकान्ति सुख ये परमात्मा के ही नाम हैं ।

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे गुण त्रयविभाग योगोनाम चतुर्दशो अध्याय ॥१४॥



❋ अथ चौदहवें अध्यायः का महात्म्य ❋

श्री नारायणोवाच—हे लक्ष्मी ! उत्तर देश काशमीर के सरस्वती क्षेत्र में एक पण्डित विद्यवान रहता था । वहां के राजा का नाम सूर्य वर्मा था । संगलदीप के राजा के साथ उसकी प्रीति थी । एक समय उस राजा ने संगलदीप से बड़े जवाहर मोती घोड़े बहुत कीमत के भेजे थे तब काशमीर के राजा ने मन में विचारा कि मैं क्या भेजूं । एक दिन अपने मंत्री से पूछा हम क्या भेजें मंत्री ने कहा, जो वस्तु वहां न होवे सो भेजना अच्छा है । राजा ने कहा और तो सब

वस्तु वहां है एक शिकारी कुत्ते नहीं है वह भेजो । सोने की जंजीरों के साथ बन्धे हुए कुत्ते मखमलों के गदेले लगाकर डोलियों मे बैठा के सङ्गलदीप में पहुंचायें उन्हें देखकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ । कहा यह शिकारी कुत्ते यहां नहीं थे यह मेरे मित्र ने बहुत भला किया हम शिकार खेला करेंगे, कई दिन गुजरे एक दिन राजा शिकार खेलने चला और भी शिकारी साथ चले सँगल-दीप के राजा ने एक और राजा के साथ शरत बांधी जिसका कुत्ता शिकार मारे मो लेवे सब राजाओं ने अपने २ कुत्ते छोड़े एक ससा निकला उसके पीछे कुत्ते दौड़े ससा दूर निकल गया । और कुत्ते पीछे रहे सँगलदीप के राजा के कुत्ते ने ससा को पकड़ा लोगों ने शोर किया कुत्ता पीछे रह गया ससा फिर भागा कुत्ते के दांत ससा को लगे थे रुधिर टपकता जाता था ससा भागा जाता था और पीछे रह गये । जाते २ बन में एक कच्चा तालाब पानी का भरा था उसके तट पर कुटिया थी वहां एक साधू रहता था उस तालाब में ससा जा

गिरा कुत्ता भी पीछे जा पड़ा। इतने राजा भी घोड़ा दौड़ा कर पहुंचा क्या देखे दोनों मरे पड़े हैं और देव देही पाकर बैकुण्ठ को चले हैं उन्होंने राजा को देख कर धन्यवाद किया। कहा हे राजन्! तू धन्य है तेरे प्रसाद से हमने देव देही पाई है। राजा ने पूछा यह कैसे उन दोनों ने कहा हम नहीं जानते इस जल को छूने से देव देही मिली है राजा ने कहा धन्य मेरे भाग्य जो तुम्हारा उद्धार हुआ। यह कह बैकुण्ठ को गए। राजा ने उस सन्त को नमस्कार करके पूछा हे सन्त जी यह वार्ता कहो यह कौतुक आश्चर्य देखा ससा स्वान दोनों का इस जल के स्पर्श करने से उद्धार हो गया यह जल कैसा है। उस सन्त ने कहा हे राजन् मेरा गुरु यहां रहता था नित्त स्नान कर गीता के चौदहवें अध्याय का पाठ किया करता था। मैं भी यहां स्नान करके गीता का पाठ करता हूँ राजा ने कहा धन्य हो सन्त जी। आपके प्रताप से ऐसी जनों का उद्धार हुआ है। मेरे भी धन्य भाग हैं आपका दर्शन हुआ है। सन्त

ने कहा, राजा तुम कहां के राजा हो ? उसने कहा, सँगलदीप का राजा हूँ।
हे सन्त जी ! मुझको पिछली कथा सुनाओ कि यह कौन थे। सन्त ने कह
राजन् यह ससा पिछले जन्म में ब्राह्मण था, वह अपने जन्म से भ्रष्ट हुआ
था यह कुतिया इसकी स्त्री थी इसने स्त्री को बहुत खिजाया, स्त्री ने वि
देकर मारा जब दोनों मरकर यम लोक में गये तब धर्म राज ने हुक्म दिया वि
इसको ससा का जन्म देवो इसको कुत्ते का जन्म देवो जब इन दोनो ं
पुकार की कि महाराज हमारा उद्धार कैसे होवेगा तब धर्मराज ने कहा, जब श्रं
गीता जी के चौदहवें अध्याय का पाठ करने वाले सन्तों के स्थान का जल
स्पर्श होगा तब तुम्हारा उद्धार होगा, यह दोनों धर्मराज के वर उद्धरे हैं त
राजा नमस्कार करके अपने घर आया, अपने पण्डित जी से नित्य प्रा
गीता के चौदहवें अध्याय का पाठ सुनने लगा, नित्य प्रति सुनने से राज
का उद्धार हुआ, देह त्याग कर बैकुण्ठ को गया। श्री नारायण जी

हे लक्ष्मी यह चौदहवें अध्याय का माहात्म्य है जो मैंने कहा है तूने श्रवण किया है।

॥ इति श्रीपद्मपुराणे उमा ईश्वर सम्वादे उत्तरखण्डे गीतामहात्म्य नाम चतुर्दशो अध्याय सम्पूर्णम ॥१४॥

* अथ पन्द्रहवांऽध्यायः *

पुरुषोत्तम योग

भगवान् श्री कृष्ण ने परमेश्वर का तात्विक रूप समझाने के लिये कहा—"हे अर्जुन ! यह जो, कल भी स्थिर रहेगा या नहीं ऐसा अस्थिर संसार वृक्ष है इसको जानने वाला ही वेदवेत्ता है। इस वृक्ष का मूल कारण सबसे उत्कृष्ट (ऊंचा) ब्रह्म है, उससे अर्वाचीन (अधोभूत) अव्यक्त महत्त तत्व आदि शाखायें हैं, यह अविच्छिन्न प्रवाह होने से अविनाशी

है, यज्ञ, दान तप आदि कर्मों का प्रतिपादन करने वाले वेद-मंत्र इसके पत्ते हैं। इस संसार रूपी वृक्ष की शाखायें गुणों से बढ़ती हैं, विषय ही उसकी सुन्दर कोंपलें हैं मनुष्य योनि में कर्मों के अनुसार बांधने वाली हैं। इस संसार वृक्ष का यह स्थूल रूप में नहीं दिखाई देता। इसका आदि, अन्त और वर्तमान नहीं है। इसलिये इस अपूर्वत्थ को, जिसकी जड़ें (अंहता, ममतता एवं वसना रूप) अति दृढ़तासे जमी है, वैराग्य रूप शस्त्र द्वारा काटकर उस परम पद परमेश्वर को अच्छी प्रकार खोजना चाहिये जहां पहुंच कर फिर नहीं लौटते। जिस परमेश्वर से इस पुरातन संसार वृक्ष की प्रवृत्ति है उस ही आदि पुरुष नारायण की शरण में मैं हूं। ऐसा समझकर,

मान एवं मोह नष्टकर, आसक्ति को जीतकर, निरन्तर भगवान् में, स्थित, कामना में नष्ट कर, सुख दुखादि द्वन्दों से विमुक्त ज्ञानी जन उस अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। जिस स्वयं प्रकाश मय परम पद को सूर्य, चन्द्रमा या अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकते और जिसको प्राप्त कर फिर लौटते नहीं हैं वही मेरा परमधाम है। देह में वह जीवात्मा मेरा ही अंश है यही प्रकृति में स्थित मन और पांचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है। जैसे वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को, वैसे जीवात्मा मन और पांचों इन्द्रियों को त्यागे हुवे शरीर से नये ग्रहण किये शरीर में ले जाता है। वहां स्थित होकर श्रोत्र, चक्षु, त्वचा, रसना, घाण, और मन के आश्रय से विषयों को भोगता है।

किन्तु शरीर को छोड़ कर जाते हुये, भोग करते हुये, तीनों गुणों से युक्त रहते इस जीव को अज्ञानी जन नहीं देख पाते, ज्ञानी ही तत्व से जानते हैं। योगीजन भी यत्न करके इसे आत्मा में स्थित देख पाते हैं। जिनका अन्तः करण शुद्ध नहीं है, वे अज्ञानी तो यत्न करके भी इसे नहीं जान पाते। सूर्य का जो तेज सारे विश्व को प्रकाशित करता है। चन्द्र और अग्नि में जो तेज है वह मेरा ही तेज है। मैं पृथ्वी म प्रविष्ट हो अपनी शक्ति से भूतों को धारण करता हूं। रसस्वरूप अमृत होकर सब औषधियों को पुष्ट करता हूं। प्राणियों के शरीर में स्थित वैश्वानर अग्नि रूप होकर प्राण और अपान से से युक्त हुआ, भक्ष्य (रोटी आदि) और भोज्य (निगला

जाने वाला दूध आदि) लेह्य (चटना आदि) चोष्य और (ऊख आदि) इन चार प्रकार के अन्न को पचाता हूं। मैं ही अन्तर्यामी रूप से प्राणियों के हृदय में स्थित हूं स्मृति, ज्ञान और अपोहन (विचार द्वारा संशय आदि दोषों को निराकरण) होता है। सब वेदों का जानने योग्य वेदान्त ज्ञान का कर्त्ता और वेद का वेत्ता भी मैं ही हूं। हे अर्जुन! इस संसार में दो पुरुष हैं। एक क्षरविनाशी शरीर और दूसरा उनमें नित्य अविकारी जीवात्मा है। इन दोनों से उत्तम एक तीसरा है जिसको परमात्मा कहते हैं यह ईश्वर तीनों लोकों का अधिष्ठाता बन कर उनका भरन पोषण करता है। मैं जड़ वर्ग से सर्वथा अतीत हूं ही। अर्थात् जीवात्मा से भी उत्तम हूं। इस लिये लोक

में और वेद में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। ज्ञानी पुरुष को इस प्रकार तत्व से जानता है वह सब प्रकार से मुझ वासुदेव परमेश्वर को ही भजता है। हे निष्पाप अर्जुन ! मैंने यह अत्यन्त गोपनीय शास्त्र तुझे बताया है। इसको तत्व से जान कर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।

॥ इति श्री मद्भगवद् गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे पुरुषोत्तमयोग नाम पंचदशो अध्याय ॥१५॥



* अथ पन्द्रहवें अध्याय का महात्म्य *

श्रीनारायणोवाच—हे लक्ष्मी ! अब पन्द्रहवें अध्याय का महात्म्य सुन ! उत्तर देश में एक नृसिंह नाम का राजा और सुभग नाम मंत्री का था राजा को मंत्री पर बड़ा भोरसा था वह उसे बहुत भला समझता था परन्तु मंत्री के मन

में कपट था वह यही चाहता था कि राजा को मारकर यही राज्य मैं ही करू इसी भाँति कुछ काल व्यतीत हुआ एक दिन राजा सोया पड़ा था और नौकर चाकर भी सोये पड़े थे तब मन्त्री राजा को नौकरों समेत मार कर आप राज्य करने लगा। राज्य करते हुये बहुत काल व्यतीत हुआ। एक दिन वह भी मर गया दूत यमराज के पास बांध कर ले गये। धर्मराज ने कहा हे यमदूतों! यह बड़ा पापी है इसको घोर नरकमें डालो। हे लक्ष्मी इसी प्रकार वह पापी कई नरक भोगता २ धर्मराज की आज्ञा से घोड़े की योनी में आया। संगल-द्वीप में जाय घोड़ा हुआ घोड़ों का बड़ा सौदागर उसे मोलले तथा और भी घोड़े खरीद कर अपने देश को आया तब यहाँ के राजा ने सुना कि अमुक सौदागर बहुत घोड़े लाया है तब राजा ने उसे बुलवा, देखकर घोड़े को भी खरीदा जब उस घोड़े को फेरा तब उसने राजा की ओर देखकर सिर फेरा राजा ने देखकर कहा, वह क्या कारण है कि घोड़े ने सिर फेरा है तब राजा ने पंडित

बुलाकर पूछा जो घोड़ा मोल लेकर फेरा था इस घोड़े ने हमको देखकर सिर फेरा है इसका क्या कारण तब पण्डित ने कहा राजन् इस घोड़े ने तुमको सिर नवाया है राजा ने कहा यह बात नहीं कई दिन के पीछे राजा उसी घोड़े पर सवार होकर शिकार खेलने को गया वह घोड़ा जल्दी चलता था राजा शिकार खेलता २ बहुत दूर चला गया आगे राजा शिकार बन्दूक तीर से मारता था उस दिन हाथों से पकड़ कर मारने लगा राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। दुपहर हो गई राजा को तृषा लगी वन में एक अतीत देखा कुटिया में बैठा है तालाब जल से भरा है। वहां राजा जा उतरा, घोड़ा वृक्ष के साथ बांधकर कुटिया में गया देखा तो साधू अपने पुत्र को गीता के पन्द्रहवें अध्याय का पाठ सिखा रहा है वृक्ष के पत्ते पर श्लोक लिख दिया और बालक को कहा खेलते फिरो और इसको कंठ भी करो, जिस वृक्ष के साथ राजा ने घोड़ा बांधा था उसी वृक्ष के पत्ते पर थी गीता जी का, श्लोक लिखा था वह बालक खेले भी

पढ़े भी ! इस पत्ते को घोड़े ने देखा तत्काल उसका देह छूटा देव देही पाई स्वर्ग से विमान आए तिस पर बैकुण्ठ को चला, आकाश में खड़ा हुआ इतने में राजा पानी पीकर बाहर आया देखा तो घोड़ा मरा पड़ा है राजा ने चिन्तावान होकर कहा यह घोड़ा किसने मारा इसे क्या हुआ इतने में वह बोला हे राजन् तेरे घोड़े का चैतन्य मैं हूँ। मैंने अब देव देही पाई है बैकुण्ठ चला हूँ राजा ने पूछा तुमने कौन पुण्य किया है उसने कहा हे राजा यह बात ऋषीश्वरजी से पूछो ! राजा ने उस ऋषीश्वर को बुलाकर पूछा हे ऋषीश्वरजी यह क्या कारण हुआ है ऋषीश्वर ने कहा राजन् गीता का लिखा हुआ पत्ता इसके आगे पड़ा है घोड़े ने अक्षर देखे हैं, इस कारण घोड़े की गति हुई । राजा नें पूछा पीछे घोड़ा कौन था और घोड़े के सिर फाने की बात भी राजा नें कही। हे ऋषीश्वर जी यह बात मुझे सुनाओ कि मेरा और घोड़े का क्या सम्बन्ध हुआ ऋषीश्वर ने कहा राजन पिछले जन्म तू राजा था यह तेरा मन्त्री था यह तुझको मारकर

राज्य करता रहा ! तू फिर भी राजा हुआ यह मरकर धर्मराज के पास गया धर्मराज ने धिक्कार कर कहा इस पापी कृतघ्न को खूब नरक भुगाओ । बड़े नरक भोगता २ घोड़े के जन्म में आया संगलद्वीप से आकर तेरे पास बिका- जब उसने सिर हिलाया तब कहा था हे राजा तू मुझे पहचानता नही परन्तु मैं पहिचानता हूँ यह कह कर ऋषिजी चुप हुये राजा ने विस्मित होकर दण्वत को पीछे से और सेना के लोग आ मिले राजा सवार हो अपने घर आया, अपने पुत्र को राज्य देकर आप बन को गया । तप करने लगा श्रीगीताजी के पन्द्रहवें अध्याय का पाठ किया करता जिसके प्रसाद से राजा भी परम गति का अधि- कारी हुआ श्री नारायण जी कहते हैं । हे लक्ष्मी ! यह पन्द्रहवें अध्याय का महात्म्य है जो मैंने कहा तू ने सुना है ।

॥ इति श्री पद्मपुराणे सतीईश्वर सम्वादे उत्तराखण्डे गीता महात्म्य नाम पञ्चदशोऽध्यायः सम्पूर्णम् ॥ १५ ॥



* अथ सोलहवाँ ऽध्यायःप्रारम्भते *

देव असुर सम्पदा विभाग योग

श्रीकृष्ण भगवान् बोले अब मैं तुझे दैवी, आसुरी संपदाओं के लक्षण बताता हूं। सर्वथा भय का अभाव, अन्तः करण की निर्मल, ज्ञान एवं कर्म योग में दृढ़स्थिति, दान, इन्द्रिय-संयम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, बुद्धि का अभाव, त्याग भावना, शान्ति, चुगली न करना, प्राणियों पर दया, अति लोभ का अभाव, कोमलता, अकार्य में लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव, तेज क्षमा, धैर्य्य, बाहर भीतर की शुद्धि अभिमान का अभाव, ये सब लक्षण दैवी संपदा प्राप्त मनुष्य में पाये जाते हैं। और पाखंड, घमंड अभिमान, क्रोध

क्रूरता और अज्ञान आसुरी संपदा प्राप्त पुरुषों में पाये जाते हैं। दैवी सम्पदा मुक्ति के लिये और आसुरी बन्धन का कारण बनती है। तू चिन्ता मत कर, तुझे दैवी सम्पदा प्राप्त है। दैवी-स्वभाव तो विस्तार से मैंने बता ही दिया अब आसुरी स्वभाव का भी विस्तार करता हूं। आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को नहीं जानते। वे शुद्ध, आचरण, और सत्य भाषण भी नहीं जानते। ये जगत् को आश्रय हीन, सर्वथा असत्य और ईश्वर रहित, स्त्री पुरुष के संयोग से स्वयं उत्पन्न मानते हैं। इसलिये उनकी दृष्टि में ये केवल भोग भोगने के लिये ही है। इस प्रकार मिथ्या ज्ञान में फंस कर ये मूर्ख अपना आपा खो कर क्रूर कर्मा बन जाते हैं।

नीच गति में ही पड़े रहते हैं। काम; क्रोध और लोभ—यह आत्म विनाशी तीन द्वार हैं—इन तीनों को छोड़ना चाहिये। इन तीनों से छुटा हुआ मनुष्य आत्म कल्याण का आचरण कर पाता है और फिर श्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है और जो पुरुष शास्त्र विधी को छोड़ कर आपकी इच्छा से बर्तता है न तो वह सिद्धी को प्राप्त होता है न सुख को न परम गति को। इस लिये हे अर्जुन ! कर्त्तव्य अकर्त्तव्य निर्णय शास्त्र से ही करना, शास्त्र विधी से नियत कर्म ही तुझे करना चाहिये।

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे दैव असुर सम्पदा विभाग योगोनाम सोलहवां अध्याय ॥ १६ ॥



❋ अथ सोलहवें अध्याय का महात्म्य ❋

श्री नारायणोवाच—हे लक्ष्मी। सोलहवें अध्याय का महात्म्य सुन! सोरठ देश में एक राजा का नाम खड़क बाहू था! धर्मात्मा था तिसके राज में घर घर ठाकुर मन्दिर थे वहां बड़े-बड़े यज्ञ हुआ करते थे तिन घरों में स्वर्ण के थम्बे जड़ाऊ जड़े हुए। राजा बड़ा हरिभक्त संत सेवक था तिसकी प्रजा भी अति सुखी थी, राजा भी दयावान सर्व जीवों पर दया करता था। तिसके घर में बहुत हाथी घोड़े धन भी था। उन हाथियों में एक हाथी मस्त था, तिसकी मस्ती रहती, महावतों को पास न आने देता जो महावत इस पर चढ़ता उसे डालता हाथी के पांव मे जंजीर डारे रहते तिसके खेद से राजा ने देशों से बत बुलाकर कहा, कोई ऐसा होय जो इस हाथी को पकड़े मैं उसे धन दूंगा हे लक्ष्मी! बस हाथी को किसी ने न पकड़ा नजदीक कोई नहीं जा सकता और वह हाथी राजा के मन्दिर के आगे खड़ा रहता, जिधर जात

लोगों को बड़ा दुःख देता उस के आगे आता तुरन्त मार डालता बन मे जाय तो वन के पशु पक्षियों को मारता नगर में लोगों को मार जहां रहे बड़ा उपद्रव करता राजा सुनकर बड़ा चिन्तावन रहता उसके उपाय करके राजा थक गया। हाथी वश में न आया राजा को बड़ी चिन्ता लग रही थी, एक दिन हाथी नगर को चला गया सामने से एक साधू चला आता था लोगों ने उस साधू को कहा हे सन्त जी यह हाथी आपको मार डालेगा। सन्त ने कहा देखो तो श्रीनारायण जी को ऐसी शक्ति है। हाथी की क्या शक्ति है, जो मुझे मारे मेरे पास नहीं आ सकता। नगर निवासियों ने कहा वह पशु तेरे भजन को क्या जाने यह तुम्हें मारेगा साधू ने कहा क्या मारेगा ? मैं परमेश्वर का प्यारा हूँ हरिभक्त हूँ जो परमेश्वर से विमुख हैं तिनको मारता है, और यह भी मेरा एक ज्ञान है कि जो मेरी मृत्यु इसी से है तो अवश्य मरूंगा। बिना आई से कोई नहीं मरता हाथी साधू के पास आ पहुँचा साधू ने नेत्र पसार कर देखा

हाथी ने सूंड के हाथ को चरन वन्दना की और खड़ा रहा तब साधू ने कहा हे गजेन्द्र मैं तुझको जानता हूँ तू पिछले जन्म में पापी था मैं तेरा उद्धार करूंगा चिन्ता मत कर हाथी बारम्बार चरण छूता माथा नवाता हाथी ने आगे ही चरण वन्दना की लोगों ने राजा को खबर की राजा भी वहाँ आया देखा तो हाथी साधू के आगे खड़ा है तब साधू ने कहा अरे गजेन्द्र तू आगे आ उस गीता पाठी सन्त ने कमण्डल से जल लेकर मुख से कहा गीता के सोलहवें अध्याय के पाठ का फल इसी हाथी को दिया इतना कह जल छिड़का जल के छिड़कते ही उसने हाथी की देह छोड़ी देव देही पाई विमान पर चढ़ राजा के सम्मुख होकर कहा, हे राजा मैं तुझको धर्मज्ञ जान तेरे नगर में रहता था कि कभी कोइ सन्त यहाँ आवेगा तब मेरी गति करेगा इसके प्रताप से मेरी सदगति हुई यह कह वैकुण्ठ को गया । राजा ने सन्त को दण्डवत (प्रणाम) की और कहा सन्त जी आपने क्या मन्त्र कहा जिससे इस अधम दुःखदायक

को सद्गति प्राप्त हुई संत ने कहा मैंने गीता के सोलहवें अध्याय का फल दिया है नित्य ही पाठ किया करता हूँ राजा ने पूछा हाथी पिछले जन्म में कौन था साधू ने कहा हे राजा यह पिछले जन्म में एक अतीत बालक था गुरू ने बहुत विद्या पढ़ाई बड़ा पण्डित हुआ वह अतीत तीर्थ यात्रा को गया पीछे उसकी शोभा बहुत हुई अच्छे अच्छे सत्संगी उसके दर्शन को आते बारह वर्ष पीछे गुरु जी आए वह अतीत नम्र थे यह बड़ी समाज लगाए बैठा था मन में सोचा अब इनके आदर को उठता हूँ तो मेरी शोभा घटेगी यह सोच कर नेत्र बन्द कर चुप हो रहा गुरुजी ने देखा मुझे देख कर इसने नेत्र बन्द कर लिये हैं यह देख कर श्राप दिया कहा रे मन्द मत ! तू अन्धा हुआ है ! मुझे देखकर सिर नहीं नवाया और न उठकर दण्डवत की है तैंने अपनी प्रभुता का अभिमान किया है सो हाथी जून होवेगा यह सुनकर बोला सन्त जी आपका बचन सत्य होवेगा पर यह कहो मेरा उद्धार कैसे होगा गुरू को दया आई कहा जो कोई

गीता के सोलहवे अध्याय के पाठका फल संकल्प कर तुझे देगा तब तेरा उद्धार होवेगा यह सुन कर राजा ने भी पाठ सीखा और अपने पुत्र को राज देकर आप तप करने लगा वन में जाकर सोलहवें अध्याय का पाठ नित्य करता समय पाए राजा सदगति को प्राप्त हुआ श्री नारायण कहते है हे लक्ष्मी यह सोलहवे अध्याय का फल है ।

इति श्रीपद्म पुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्तराखण्डे गीता महात्म्य नाम सोलहवां अध्याय सम्पूर्णम् । १६॥



* अथ सप्तदशोऽध्याय *

श्रद्धामय विभाग योग

भगवान् के वचनों को सुनकर अर्जुन बोला, हे श्रीकृष्ण ! जो शास्त्र विधी को छोड़कर केवल श्रद्धा से युक्त हुये देवादिकों का पूजन करते हैं उनकी स्थिति फिर कौनसी है ? सात्विकी,

राजसी या तामसी ? इस प्रकार अर्जुन के पूंछने पर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन ! शास्त्र संस्कार रहित स्वाभाविक श्रद्धा, सात्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकार की होती है। मनुष्यों की यह श्रद्धा उसके अंतः करण के अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है इसलिये पुरुष जैसी श्रद्धा वाला है, वह स्वयं भी वैसा ही है। सात्विक पुरुष देवताओं की, राजस यक्ष राक्षसों की, तामस जन प्रेत एवं भूत गणों की पूजा करते हैं। दम्भ, अहंकार, कामना, आसक्ति और बल का अभिमान रखते हैं। शरीरस्थ भूत समुदाय (मन इन्द्रियादि) को और अंतः करण में स्थित मुझ अन्तर्यामी को भी कृश करने वाले हैं; वे आसुरी व के हैं। भोजन भी, और यज्ञ, तप तथा दान भी इनके

सात्विक राजस और तामस–तीन तीन प्रकार के हैं। सुन! सात्विक मनुष्य को आयु, बुद्धि बल स्वास्थ्य, सुख और प्रीति बढ़ाने वाले रसीले, चिकने स्थिर शरीर में देर तक रहने वाले स्वभाव से ही मन को प्यारे लगने वाले भोजन अच्छे लगते हैं। राजस पुरुष को कड़वे खट्टे, नमकीन, अति गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक, दुःख, चिन्ता और रोगकारक आहार प्यारे लगते हैं। तामस पुरुष अधपके, रस रहित, सड़े-गले, बासी, झूठे, अपवित्र भोजनों को पसन्द करता है। यज्ञों में जो फल की आशा छोड़ कर, करना ही यह समझ कर विधि पूर्वक किया जाता है वह सात्विक यज्ञ है। जो यज्ञ फल कांक्षा या दम्भा चरण के लिये किया जाता है वह राजस है। और जो

यज्ञ शास्त्र विधी से हीन, अन्न दान से रहित मन्त्र और दक्षिणा के बिना, श्रद्धा हीन किया जाता है वह तामस कहलाता है। हे अर्जुन ! तप तीन प्रकार के हैं, शारीरिक, वाचिक और मानसिक। देवता, ब्राह्मण, गुरु एवं ज्ञानी पुरुषों की सेवा, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप है। क्षोभ उत्पन्न न करने वाला प्रिय एवं हितकारक यथार्थ भाषण और स्वाध्याय एवं नाम जपन का अभ्यास-यह वाचिक तप हैं। मन की प्रसन्नता, शान्ति, भाव, वाणी का निग्रह, अन्तः करण का संयम, चित्त की पवित्रता यह मानसिक तप है। इन तीनों प्रकार के तपों को निष्काम भावना मे श्रद्धा पूर्वक करना सात्विक तप है और इन्हीं को सत्कार, मान और पूजा के लिये अथवा केवल

पखंड से करना राजस है। राजस तप का फल क्षणिक और अनिश्चित है। जो तप मूढ़ता तथा हट से अपने आप को सता कर अथवा दूसरों का नाश करने के निमित्त किया जाता है वह तामस है। देना ही है यह समझते हुवे, उपकार न करने को भी देश काल और पात्र का विचार करते हुवे दिया जाता है। वह दान सात्विक है। देश काल, दान ग्रहीता के अभाव को देखना, देश, काल और पात्र का विचार कहते हैं। प्रत्युपकार के लिये अथवा फल की आकांक्षा से क्लेश पूर्वक दिया गया दान राजस है। और देस काल और पात्र को न देखकर सत्कार रहित अथवा तिरस्कारपूर्वक जो दान दिया जाता है वह तामस कहलाता है हे अर्जुन! परमात्मा के—ओं, तत् सत् ये तीन नाम

बताये हैं। उसीने सृष्टि के आरम्भ में यज्ञ, वेद और उनको करने वाले मनुष्य (ब्राह्मणों) को रचा है इसीलिये ईश्वर वादी, आस्तिक जन, यज्ञ, दान और तप की क्रियाओं के आरम्भ में ओ३म् इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके ही करते हैं मोक्ष को चाहने वाले पुरुष, फल का उद्देश्य न रखते हुये मेरे किये से परमात्मा प्रसन्न हों-उसके लिये ही यह है-ऐसा समझकर यज्ञ दान तप करते हैं। सत् शब्द का प्रयोग विद्यमानता, साधुता तथा माङ्गलिकता में किया जाता है यज्ञ, तप और दान में उत्तम कर्म होने से सत् कहे हैं। यज्ञ दान और तप के लिये किया गया कर्म भी निश्चय से सत् है। हे अर्जुन! ईश्वराज्ञा द्वारा विदित यज्ञ, दान और तप भी यदि श्रद्धा से

न किया जाये तो वह सब असत् होता है उसका न तो इस लोक में फल होता है; न परलोक में ही। इस लिये मनुष्य को चाहिये कि सच्चिदानन्द घन परमात्मा के नाम का निरन्तर चिन्तन करता हुआ निष्काम भाव से केवल परमेश्वर के लिये शास्त्र विधि से नियत कर्मों को परम श्रद्धा और उत्साह से किया करें।

इति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषद् सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्ण अर्जुन सम्वादे त्रिविध श्रद्धा योगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥



❀ अथ सत्रहवें अध्याय का महात्म्य ❀

श्री नारायणोवाच—हे लक्ष्मी ! अब सत्रहवें अध्याय का महात्म्य सुन मंडलोक नाम देश में दुशासन नाम का राजा था। एक राजा किसी और देश का था जिन्होंने आपस में एक शर्त बांधी हाथी लड़ाये और कहा जिसका हाथी

जीते सो वह अमुक धन लेवे। तब दूसरे राजा का हाथी जीता दुशासन का हाथी हारा। कोई दिन पीछे हाथी मर गया राजा को बड़ी चिन्ता हुई कि द्रव्य गया दूसरा हाथी मरा तीसरे लोगों में हँसी हुई इससे निन्दा चली इस चिन्ता में राजा भी मर गया यमदूत पकड़कर धर्मराज के पास ले गये धर्मराज ने हुक्म दिया यह हाथी के मोह से मरा है इसको हाथी की योनि दो। हे लक्ष्मी! राजा दुशासन संगलदीप जाकर हाथी हुआ। वहाँ उस राजा के बहुत हाथी थे तिनमें आया उसे पिछले जन्म की खबर थी मन में बारंबार यही पछताता कि मैं पिछले जन्म कौन था अब हाथी हुआ हूँ बहुत रुदन करता खावे पीवे कुछ नहीं इतने में ब्राह्मण आया उसने राजा को एक श्लोक सुनाया राजा बड़ा प्रसन्न हुआ कहा हे पण्डित जी! कुछ मांगो उसने कहा और मेरे पास सब कुछ है एक हाथी नहीं राजा ने सुनकर वही हाथी दिया। ब्राह्मण अपने घर ले आया रात को दाना दिया उसने न खाया पानी भी नहीं पिया रुदन करता मन में चितवे

कोई ऐसा होवे जो मुझे इस योनि से छुड़ावे तब उस ब्राह्मण ने महावत को बुलाया पूछा कि इसको क्या दुःख है खाता पीता कुछ नहीं है महावत ने कहा इसको दुःख कुछ नहीं। तब ब्राह्मण ने राजा को कहा हाथी खाता पीता कुछ नहीं खड़ा रुदन करता है। यह खबर सुनकर राजा आप देखने को आया राजा ने भले वैद्य और महावत बुलाये और सबको हाथी दिखाया उन्होंने देख कर कहा राजा जी इसको मानसिक दुःख है। देह का कोई दुःख नहीं। तब राजा ने कहा हाथी तू ही बोलकर कह तुझे क्या दुःख है परमेश्वर की शक्ति से मनुष्यों की भाषा में हाथी ने कहा हे राजन् तू बड़ा धर्मज्ञ है यह ब्राह्मण भी बुद्धिमान है इसके घर का अन्न सो खावे जो बड़ा धर्मात्मा हो मुझको कब मिले तब ब्राह्मण ने कहा हे राजा! अपना हाथी फेरले। राजा ने कहा मैं दान किया हुआ नहीं फेरता यह मरे चाहे जावे तब हाथी ने कहा सन्त जी तू मत कल्प कर तेरे घर में कोई गीता की पुस्तक हो तो मुझे गीता के सत्तारहवें अध्याय

का पाठ सुनाओ तब उस ब्राह्मण ने ऐसा ही किया हे लक्ष्मी ! सतारहवें अध्याय के सुनते ही तत्काल हाथी की देह छूटी आकाश से विमान आए देव देही पाकर विमानों पर चढ़ के राजा के सामने आ खड़ा हुआ राजा की स्तुति करी। राजन तू धन्य है तेरी कृपा से मैं इस अधम देह से छूटा हूँ राजा को अपनी पिछली कथा सुनाई हे राजन् मैं पिछले जन्म में राजा था मैंने हाथी लड़ाये थे मेरा हाथी हार गया मैं उसी चिन्ता में मर गया और धर्म राज की आज्ञा से मैंने हाथी का जन्म पाया मैंने प्रार्थना करी थी मेरा छुटकारा कहो कब होवेगा धर्मराज ने कहा गीता के सतारहवें अध्याय के सुनने से तेरी मुक्ति होवेगी। सो तेरी और पण्डित जी की कृपा हुई मैं वैकुण्ठ को जाता हूँ हाथी देव देही पाकर वैकुण्ठ को गया। राजा अपने घर आया। श्री नारायण कहते हैं हे लक्ष्मी यह सतारहवें अध्याय का महात्म्य है जो तैंने सुना है।

श्री पद्म पुराणे सती ईश्वर संवादे उत्तराखण्डे गीतामहात्म्य नाम सतारहवां अध्याय सम्पूर्णम् ॥ १७ ॥

* अथ अष्टदशोऽध्याय *

श्रद्धामय विभाग योग

इसके पश्चात् अर्जुन ने कहा—"हे महाबाहो ! श्रीकृष्ण मैं मन्यास और त्याग के यथार्थ रूपको जानना चाहता हूं। इन को मुझे समझाइये। ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं या पृथक्-पृथक अर्थों के। यदि पृथक्-पृथक् अर्थों के वाचक हैं तो वे क्या-क्या हैं ?" अर्जुन के इस प्रश्न के उत्तार में श्री भगवान् ने कहा-"वेद के विद्वानों ने इस लोक अथवा परलोक की कामनाओं—पशु धनधान्य अथवा स्वर्ग आदि—के लिये विहित अग्निहोत्र दर्श पूर्णमास आदि कर्मों के छोड़ने का नाम सन्यास बताते हैं। और बुद्धिमान पुरुष नित्य नैमित्तिक सब

प्रकार के कर्मों—ईश्वर की भक्ति, देवताओं का पूजन माता-पिता आदि गुरुजनों की सेवा; यज्ञ, दान तप, वर्णाश्रमधर्म—आदि सब कर्तव्य कर्मों—में इस लोक या परलोक की सम्पूर्ण कामनाओं के त्याग को त्याग कहते हैं। कई विद्वानों का यह मत है कि नित्य नैमित्तिक सब ही कर्मों में हिंसादि दोष लगता है अतएव सब ही कर्म छोड़ने चाहिये। दूसरे यह कहते हैं कि यज्ञ, दान, और तप कर्म तो करने ही चाहियें। इस भिन्न मतों में मेरा तो यह निश्चय है। सुन! त्याग तीन प्रकार का है सात्त्विक, राजस और तामस। यज्ञ, दान और तप इसका त्याग नहीं करना चाहिये। कारण कि ये तीनों मनुष्यों के चित्तको शुद्ध करने के साधन हैं। परन्तु इन कर्मों को आसक्ति

एवं फलाकांक्षा छोड़कर करना चाहिये —यह मेरा निश्चय मत है। ज्योतिषों आदि अनिमत यज्ञादि कर्म से भिन्न जो अवश्य करणीय नित्यकर्म हैं, उनका त्याग कभी भी उचित नहीं है अज्ञान से किया गया उनका त्याग तामस त्याग कहलायेगा। और यदि कर्म को काट कर मानते हुये शरीर को दुःख लगेगा इस आशंका से छोड़ दिया जाय तो यह त्याग राजस त्याग है। राजस त्याग वाले को भी त्याग का फल नहीं मिलता। यदि कर्म को कर्त्तव्य है ऐसा मानकर नियम पूर्वक किया जाय–परन्तु उसमें आसक्ति न हो, न उसके फल की आकांक्षा हो तो यह फल त्याग ही सात्विक कर्म-त्याग कहलाता है। कर्म का सात्विक त्याग करने वाला आत्मनिष्ठ, मेधावी, संशय

रहित पुरुष व शरीर को कष्ट देने वाले कठिन कर्त्तव्य कर्म से घबराता नहीं और सुकर कर्त्तव्य कर्म में आसक्ति नहीं होता जो भी कर्त्तव्य कर्म है। वह चाहे सुकर हो अथवा दुष्कर, मात्र कर्त्तव्य बुद्धि से उसे यथोविधि सम्पन्न करता है। कारण यह है कि कोई शरीरधारी सर्वथा कर्मों को छोड़ नहीं सकता। हां जो मनुष्य कर्त्तव्य कर्मों के फलों की आकांक्षा को छोड़ कर उन कर्त्तव्य कर्मों को करता है, वह त्यागी ही है। कर्मों के फल तीन प्रकार के होते हैं, प्रिय अप्रिय और मिश्रत। जो लोग फल त्यागी नहीं हैं, उन्हें इस जन्म अथवा दूसरे जन्म में अपने कर्मों का अच्छा बुरा या मिश्रित फल भोगना ही होता है। परन्तु त्यागियों को ये फल नहीं भोगने पड़ते। कर्म अपने फल

को कैसे उत्पन्न नहीं करते इसे समझाने के लिए श्रीकृष्ण भगवान् ने बताया कि कोई भी लौकिक—या वैदिक कर्म हो उसको सम्पन्न करने के लिए पांच कारण सांख्य शास्त्र में बताये हैं—अधिकाम अर्थात् शरीर; कर्त्ता—जीवात्मा हस्त, वाद चत्तु श्रोत्र मन आदि इन्द्रिय-करण; नाना चेष्टायें; और पूर्व कृतपुण्य पाप के संस्कार (दैव) मनुष्य शरीर इन्द्रिय आदि से जो भी कर्म—वह शास्त्र विहित हो या शास्त्र विरुद्ध अमृम्भ करता है—उसकी सम्पूर्णतां में ये पांच साधक हैं। जब यह बात है तो जो अन घड़ पुरुषमात्र जीवात्मा को ही कर्ता मानता है किसी कार्य का सम्बन्ध देखता है, वह दुर्मति देखता हुआ भी नहीं देखता। जिस मनुष्य में कर्त्रीपन का अभिमान नहीं है, जो कर्त्तव्य

कर्म का निर्वाह करने के समय उस कर्म में लिप्त नहीं होता वह चाहे सब लोगों को मार भी डाले तब भी नहीं मारता। क्षत्रिय के लिये युद्ध करना वेदविहित कर्म है। युद्ध के समय कर्तव्य बुद्धि से मारना ही मारना नहीं कहलाता। हे अर्जुन! वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान (यह इष्ट है अथवा अनिष्ट आदि) ज्ञातव्य वस्तु, और ज्ञानाश्रय भोक्ता जीवात्मा—ये तीन तो कर्म में प्रवृत्ति के कारण हैं। और स्वयं कर्म, उसको निष्फल करने के साधन मन तथा इन्द्रिय और करण (मन, वाणी हस्त पाद-आदि इन्द्रियाँ) का प्रयोग करने वाला जीवात्मा कर्ता ये तीन लौकिक वैदिक कर्मों के आश्रय हैं। फिर ज्ञान, कर्म और कर्ता भी गुण भेद से प्रत्येक तीन प्रकार के हैं। इनमें सात्विक ज्ञान

वह है जब कि इन नानारूप (विभक्त) पदार्थों (प्राणी-अप्राणी) में माला के नाना प्राणियों को जोड़ने वाले एक धागे की भांति अभिन्न एक अविनाशी श्रोत्ता को जान जाता है। इसके विपरीत सब पदार्थों को भिन्न-भिन्न रूप में जानता राजसज्ञान हैं और कार्यरूप शरीर प्रतिमा आदि को ही सब कुछ जानकर उसमें आसक्त रहना, युक्ति विरुद्ध, यथार्थ एवं निकृष्ट ज्ञान तामस ज्ञान कहलाता है। इसी प्रकार हे अर्जुन! जो कर्म प्रकृति और शास्त्र से नियत है, जिसका नित्य अनुष्ठा आवश्यक है। आसक्ति से रहित है राग और द्वेष को छोड़कर किया गया है, फल की अकांक्षा भी जिसकी प्रवृत्ति का हेतु नहीं है, वह कर्म सात्विक है। और फलेच्छा एवं कर्तृत्वाभिमान

से किया गया बहु प्रयत्न साध्य कर्म राजस कर्म है। और जो कर्म उसके परिणाम, हानि, प्राणी पीड़ा और अपनी सामर्थ का विचार किये बिना विवेक के बिना ही आरम्भ कर दिया जाता है वह कर्म तामस है। फिर कर्त्ता वह सात्विक है। जो आसक्ति को छोड़कर कर्म करता है, कर्म फल का भोक्ता मैं हूं। ऐसे अहंकारी वचन नहीं बोलता, धीर और उत्साही है। तथा कर्म की सफलता और असफलता दोनों में जिसका चित्त विकृत नहीं होता। जिस कर्ता को अपने कर्म में आसक्ति है, उसके फल की इच्छा से कर्म में प्रवृत्त हुआ है। लोभी है। उसके लिए हिंसा-अहिंसा, शुद्ध, अशुद्धि की परवाह नहीं करता और कर्म सिद्धि से जिसे हर्ष और असफलता में जिसे शोक

होता है, वह कर्त्ता राजस है। जो कर्त्ता निक्तिप्त, शिक्षा से रहित घमंडी, धूर्त, दूसरों के अपमान करने वाला, आलसी, कामों को देरी तक छोड़ देने वाला है, वह कर्त्ता तामस कहलाता है। हे अर्जुन! अब मैं बुद्धि और धृति (धारना शक्ति) के जो तीन-तीन प्रकार सत्विक आदिगुण भरे से हैं—उन्हें विस्तार से बताता हूं। सुन! जब बुद्धि शास्त्र से विहित और निषिद्ध कर्तव्य अकर्तव्य, अकर्तव्य होने से भय जनक और कर्तव्य होने से भय रहित, बन्धन हेतु और मोक्त साधन—इन रूपों में कर्म को पहिचानती है तब वह सात्विक होती है और जिस बुद्धि से धर्म अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य के ज्ञान का सन्देह बना रहता है वह बुद्धि राजस है। और जिस बुद्धि से अधर्म को धर्म इत्यादि सब पदार्थों

का विपरीत ज्ञान होता है वह बुद्धि तामसी बुद्धि है। जिस धारणा शक्ति से मनुष्य अपने मन, प्राण और इन्द्रियों को वश में रखता है उन्हें निष्काम कर्म योग में लगता है, वह धारणा शक्ति सात्विक है। और जिस धारना शक्ति द्वारा मनुष्य धर्म, काम और अर्थ की इच्छा से कर्म करता है वह धारण राजसी है जिस धारणा शक्ति के कारण दुष्ट बुद्धि मनुष्य निद्रा-भय, चिन्ता, दुःख और उन्माद में घिरा रहता है वह धारण शक्ति तामसी है। इसी प्रकार दुःख भी तीन प्रकार का है। जिस सुख में साधक अभ्यास से मग्न रहता है और दुखों को नाश हो जाता है, प्रारम्भ में भले ही विष की भांति अग्राह्य प्रतीत होता है।

परिणाम अमृत का-सा लगता है, आत्मज्ञान की प्रसन्नता

से उत्पन्न हुआ ऐसा सुख सात्विक सुख है। और जो सुख विषयों के साथ इन्द्रियों का संयोग होने पर प्रारम्भ में अमृत के समान मीठा, परन्तु परिणाम में विष की भांति कटु प्रतीत होता है वह सुख राजस है। जो सुख प्रारम्भ और अन्त दोनों में ही भ्रान्ति में डाल रखता है, निद्रा आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न वह सुख तामस सुख है। हे अर्जुन ! पृथ्वी, आकाश और उनसे भी परे विषमात्र देवलोकों में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो सत्व, रज और तम, इन तीन गुणों से रहित हो। इसलिये अर्जुन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न गुणों के कारण ही बांटे गये हैं। स्वभाव पूर्वकृत कर्मों के संस्कार से बनता है। ब्राह्मण के स्वभाविक कर्म हैं—अन्तःकरण का निग्रह, इन्द्रियों का

दमन, बाहर भीतर की शुद्धि, सहनशीलता, सरलता, आस्तिक बुद्धि ज्ञान, और परमात्मतत्त्व का अनुभव। क्षत्रिय स्वाभाविक धर्म हैं—शूरता, तेज, धीरता, चतुरता संघर्ष (युद्ध) से न भागने का स्वभाव, दान, और स्वामीभाव ! खेती, गोपालन, क्रयविक्रय, लेन, देन, आदि व्यवसाय ये वैश्य के स्वभाविक धर्म हैं। शूद्र का स्वाभाविक धर्म सब वर्णों की सेवा करना है। स्वभाव के अनुसार अपने कर्म करने वाला मनुष्य उसमें सफलता प्राप्त करता है। ऐसा मनुष्य परम सिद्धि को भी प्राप्त होता है—कैसे ? सो सुन ! हे अर्जुन ! जिस परमात्मा से सब भूतों की उत्पत्ति हुई है, जिससे यह सब जगत् व्याप्त है उसे परमात्मा को अपने स्वभाविक कर्म द्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धि

को प्राप्त कर लेता है इसलिये अच्छी प्रकार सुविधा पूर्वक आचरण किये हुये दूसरे के धर्म (स्वभाव के विपरीत आचरित कर्म) से स्वभावानुसारी धर्म श्रेष्ठ है! स्वभाव नियत कर्म को करने वाला कभी पाप का मार्ग नहीं बनता। हिंसादि दोष के भय से अपने स्वभावानुसारी कर्म को नहीं छोड़ना चाहिये। अग्नि जैसे धुएं में लिपटी रहती है वैसे कर्म तो सब ही दोषों से मढ़े हैं; इस कारण किसी कर्म को छोड़ा नहीं जा सकता। हां सब ही कर्मों में आसक्ति से रहित होकर, स्पृहा छोड़कर स्वजन्म करण को अपने वश में रख कर कर्म करने वाला पुरुष कर्म फल त्याग द्वारा निष्कर्म-सिद्ध को प्राप्त कर लेता है और निष्कर्म-सिद्ध को प्राप्त होता है मनुष्य ही सच्चिदानन्द घन

परमात्मा को प्राप्त करता है। सो कैसे ! सुन ! निष्कर्म सिद्धि को प्राप्त मनुष्य विशुद्ध बुद्धि वाला धारण शक्ति से अपने मन आदि को वश में किये, हुये, शब्दादि विषय और रागद्वेष सबको छोड़कर, एकान्त सेवी, मिताहारी, ध्यान योगी, दृढ़ वैरागी, अहङ्कार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध और संग्रह को छोड़े हुए, ममता रहित शान्त अन्तःकरण पुरुष ब्रह्म में एकीभाव के योग्य होता है। ब्रह्म में एकीभूय प्रमुदितान्तःकरण पुरुष को न शोक सताता है न इच्छायें। वह सब में समता बुद्धि से युक्त होता है और मेरी सर्वोत्कृष्ट भक्ति का पात्र होता है। भक्ति से मेरे परिमाण और स्वरूप को यथार्थ जानकर तत्पश्चात् मुझ (परमात्मा) में लीन होता है। मुझ परम

परिमाण और स्वरूप को यथार्थ जानकर तत्पश्चात् मुझे (परमात्मा) में लीन हो जाता है। मुझ परम आश्रित भक्त सब कर्मों को करता हुआ भी ज्ञान प्राप्ति रूप मेरी प्रसन्नता के कारण अविनाशी स्थिति को प्राप्त होता है। अध्यात्मिक चित्त से सब कर्मों को मुझ ईश्वर में स्थापित कर समत्व बुद्धि रूप योग का आश्रय लेकर निरन्तर मुझ में लीन रहे। मुझ में चित्त देने से सब संकटों को अनायास ही तर जायगा। यदि अहंकार के कारण तू इधर ध्यान नहीं देगा तो निश्चय ही परमार्थ से भ्रष्ट हो जायगा। यदि अहंकार के कारण तू ऐसा मन में कि मैं युद्ध नहीं करूंगा तो यह निश्चय मिथ्या है। क्योंकि क्षत्रिय पन का अभाव तुझको बलात् युद्ध में लगा देगा। हे अर्जुन !

अपने स्वाभावोत्पन्न कर्म से बंधा हुआ तू यदि अज्ञान से अपने स्वाभाविक इस युद्धादि कर्म को नहीं भी करना चाहता तो भी विवशता से तुम्हें वह करना ही होगा। हे अर्जुन! प्रकृति और उसके कार्यों का नियामक स्वामी परमेश्वर, सूत्रादि मन्त्र द्वारा जैसे पुतली वाला पुतलियों को नचाता है वैसे ही शरीराधिष्ठित सब प्राणियों को अपनी सत्व-रज-तमोमयी प्रकृति से नचाता हुआ सब के अन्तःकरणों में अन्तरयामी रूप से स्थित है। हे भरत पुत्र! उसी ईश्वर की अनन्य शरण में पहुंचो उसकी प्रसन्नता से सर्वोत्कृष्ट शान्ति प्राप्त होगी। गीताशास्त्र का उपसंहार करते हुये भगवान् श्रीकृष्ण ने अन्त में कहा—हे अर्जुन! मैंने तुझे गोपनीय से भी अति गोपनीय यह रहस्ययुक्त ज्ञान भली भांति

समझाया है। अब जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर। इतना कहने के पश्चात् अर्जुन का कोई उत्तर न मिलने पर भगवान् ने फिर दोहराया कि सम्पूर्ण गोपनीयों से भी गोपनीय मेरे वचन को तू फिर सुन। तू मेरा अतिशय प्रिय है—इसलिये यह हितकारक वचन फिर भी दुहराऊंगा। हे अर्जुन! तू केवल मुझ सच्चिदानन्द घन परमात्मा में ही मन लगा, परमात्मा का ही भजन कर, पूजन नमस्कार एवं परमेश्वर का ही कर। ऐसा करने से निश्चय ही तू मुझ (परमात्मा) में लीन होगा—मैं तेरे लिये सत्य प्रतिज्ञा करता हूं। तू मेरा प्रिय सखा है। तब नित्य नैमित्तिक कर्मों का आश्रय छोड़ कर केवल परमात्मा की अनन्य भक्ति कर। इससे सब पापों से मुक्त हो जायेगा। तू शोक मत कर। हे अर्जुन

यह जो तेरे हित के लिये मैंने कहा है इसे किसी तप रहित, भक्ति रहित, सुनने की इच्छा न रखने वाले अथवा परमेश्वर की निन्दा करने वाले को नहीं बताना चाहिये। जो पुरुष मुझ में अत्यन्त भक्ति रखता हुआ मेरे भक्तों को इस परम रहस्य को बतलायेगा वह निस्सन्देह मुझे प्राप्त होगा। मनुष्यों में उससे अधिक मेरा प्रेमी और मुझे उससे अधिक प्रिय नहीं होगा और जो हमारे इस धर्ममय संवादका स्वाध्याय करेगा वह ज्ञान यज्ञ से मेरी पूजा करेगा। श्रद्धालु और दोष दृष्ट से रहित कोई पुरुष इसे सुन भी लेगा तो भी पापों से मुक्त हो पुण्यात्माओं की गति को प्राप्त करेगा। हे अर्जुन! बता तो सही तूने ध्यान से सुना या नहीं तेरा अज्ञान नष्ट हुआ या नहीं! अर्जुन बोला

हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया, मुझे स्मरण हो आया अब मेरा सन्देह दूर हो गया अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। संजय ने कहा राजन ! मैंने श्री बासुदेव और महात्मा पार्थ के इस अद्भुत रहस्यमय रोमांचकारी संवाद को सुना। श्री व्यास जी की कृपा का यह फल है कि इस परम गोपनीय रहस्य को स्वयं योगेश्वर कृष्ण के मुख से मैंने सुना है। हे राजन् ! केशव और अर्जुन के इस पुण्यमयं संवाद को याद कर के मुझे पुनः पुनः हर्ष होता है और भगवान् का वह अति अद्भुत रूप याद कर करके मुझे बार बार आश्चर्य एवं हर्ष होता है विशेष क्या कहूं। मेरा तो यह निश्चित् मत है कि योगेश्वर कृष्ण और गांडीव धारी अर्जुन

जिधर हैं—उधर ही श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है ।

॥ ॐ तत्सत् ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे
मोक्ष सन्यासो विभाग योगोनाम अठारहवां अध्याय ॥१८॥



❋ अथ अठारहवें अध्याय का महात्म्य ❋

श्री नारायणोवाच—हे लक्ष्मी अब अठारहवें अध्याय का महात्म्य सुन जैसे सब नदियों में गङ्गाजी श्रेष्ठ है, सब क्षेत्रों में हरिद्वार, सब तीरथों में पुष्पराज, सब पर्वतों में कैलाश पर्वत सब ऋषियों में नारद है सब गउओं में कपिल काम धेनु गऊ तैसे ही सब अध्यायों में गीता का अठारहवां अध्याय श्रेष्ठ है तिसका फल सुन सुमेरु पर्वत देव लोक में इन्द्र अपनी सभा लगाये बैठा था, उरवशी नृत्य करती थी बड़ी प्रसन्नता में बैठे थे इतने में एक चतुरभुज धारी को पारखद लाये इन्द्र को सब देवताओं के सामने कहा तू उठ इसको बैठन

दे यह सुनकर इन्द्र ने प्रणाम किया उसने तेजस्वी को बैठा दिया इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति से पूछा गुरुजी ! तुम त्रिकाल दर्शी हो देखो इसने कौनसा पुण्य किया है जिससे यह इन्द्रासन का अधिकारी हुआ है; मेरे जानने में इसने कोई पुण्य व्रत यज्ञ दान नहीं किया विशेष ठाकुर मन्दिर नहीं बनाया तालाब और कूप नहीं लगाया किसी को अभयदान नहीं दिया, बृहस्पति जी ने कहा चलो नारायण जी से पूछें तब राजा इन्द्र बृहस्पति ब्रह्मादिक सब देवता श्री नारायणजी के पास गये, जाकर दंडवत कर प्रार्थना पूर्वक कहा, हे स्वामिन दास सहायक भक्तरक्षक आपके चार पारखदों ने एक चतुर्भुज तेजस्वी स्वरूप को लाकर मुझको इन्द्रासन से उठा उसको बैठा दिया है मैं नहीं जानता उसने कौन पुण्य किया है मैंने कई अश्वमेध यज्ञ किये हैं तब मुझे इन्द्रासन का अधिकारी आपने किया है। इसने एक यज्ञ भी नहीं किया यह मुझे बड़ा आश्चर्य है, तब श्रीनारायण जी ने कहा हे राजेन्द्र ! तू मत डर, अपना राज्य

कर इसने बड़ा शुभ उत्तम पुण्य किया है इसका नियम था कि नित्य प्रति स्नान कर श्री गीता जी के अठारहवें अध्याय का पाठ किया करता था इसके मन में भोगों की तृष्णा रही थी जब इसने देह छोड़ी तब मैंने आज्ञा करी हे पार्षदों ! तुम इसको पहिले जाकर इन्द्र लोक भोगावो जब इसका मनोरथ पूरा हो तो मेरी सायुज्य मुक्तिको पहुँचाओ तुम जाकर भोगों की सामग्री इकट्ठी करदो तब इन्द्र और सब देवताओं ने आकर सब वस्तु भोगों की एकत्र कर दी और कहा इन्द्र लोक के सुख को भोगो । कुछ काल इन्द्र पुरीके सुख भुगा कर फिर श्री भगवान की कृपा से सायुज्य मुक्ति देकर वैकुण्ठ का अधिकारी किया श्रीनारायण जी कहते हैं हे लक्ष्मी ! शिव जी कहते है, हे पार्वती यह अठारहवें अध्याय का महात्म्य है ।

इति श्री पद्म पुराणे श्री ईश्वर सम्वादे उत्तरा खण्डे गीता महात्म्य नाम अष्टदशोध्याय सम्पूर्ण ॥ १८ ॥



जय गीता माता श्री जय गीता माता । सुख करनी दुःख हरनी तुम को जग गाता ॥
टेक–जय गीता माता मैया जय गीतामाता, सुख करनी दुःख हरनी तुम को जय माता ॥
अज्ञान मोह ममता को छीन में नाश करे, सत्य ज्ञान का मन में तू प्रकाश करे ॥ जय० ॥
शरण तेरी जो आवे तेरी मति ग्रहन करे, पाप ताप मिट जावें निर्भय भव सिन्धु तरे ॥ जय ॥
रण क्षेत्र में अर्जुन जब शोक धीर हुआ, कर्तव्य कर्म तज बैठा बहुत मलीन हुआ ॥ जय ॥
तब श्रीकृष्णचन्द्रके मुखसे तुमने अवतारलिया, तत्त्व बात समझाकर उसका उद्धारकिया ॥जय०॥
शरीर जन्मते मरते आत्मा अविनाशी, शरीर को दुःख व्यापे आत्मा सुख रासी ॥ जय० ॥
अतः शरीर की ममता मन से त्याग करो, आत्मा ब्रह्म को चीन्हो उससे अनुराग करो ॥जय०॥
सब में ब्रह्म को जानो सब से प्रीत करो, वैर भाव ममता वश होकर न अनरीत करो ॥जय०॥
निष्काम कर्म नित्य करके जग का उपकार करो, फल वांछा को त्यागो सद् व्यवहार करो ॥जय०॥
मन को वश में करके मैं इच्छा त्याग करो, निष्काम जगत में रह कर हरि से अनुराग करो ॥जय०॥
यह उपदेश जो तेरे । नर मन में लावे, भगवान भवसागर से वह क्यों न तर जावे ॥
॥ जय गीता माता ॥

अथ हनुमान चालीसा २

॥ दोहा ॥

श्री गुरु चरण सरोज रज निज मन मुकर सुधार, बरणों बिमल यश जोदायक फल चार ॥

बुद्धि हीन तनु जानिके सुमरौं पवन कुमार, बल बुद्धि विद्या देहु मोहि हरहु क्लेश विकार ॥

चौ०—जय हनुमान ज्ञान गुण सागर । जय कपीश तिहुं लोक उजागर ॥ राम दूत अतुलित बल धामा । अञ्जनी पुत्र पवन सुत नामा । महावीर विक्रम बजरङ्गी । कुमति निवार सुमति के सङ्गी । कञ्चन वरण विराज सुवेशा । कानन कुण्डल कुञ्चित केशा ॥ हाथ वज्र ध्वजा विराजै । कांधे मुञ्ज जनेऊ साजै । शंकर सुमन केशरी नन्दन । तेज प्रताप महा जग वन्दन ॥ विद्यावान गुणि अति चातुर राम काज करिवे को आतुर ॥ प्रभु चरित्र सुनिवेको रसिया । राम लषण सीता मनवसिया ॥ सूक्ष्म रूप धरि सियहि दिखावा । विकट रूप धरि लंक जरावा । भीम रूप धरि असुर संहारे । रामचन्द्र के काज संवारे । लाये सुञ्जिवन लषण जीवायो । श्री रघुवीर हरषि उरलायो । रघुपति कीन्ही वहुत बड़ाई । तुम मम प्रिय भरत सम भाई ॥ सहस्त्र वदन तुम्हरो यश गावैं । अस कहि श्रीपति कण्ठ लगावे । सनकादिक ब्रह्मादि मुनीशा । नारद शारद सहसअहीशा ॥ यम कुवेर दिगपाल जहां ते । कवि कोविद कहि सकै कहां ते ।, तुम उपकार सुग्रीवहि कीन्हा ॥ राम मिलाय राज पद दीन्हा ॥ तुमरो मन्त्र विभिषण माना लंकेश्वर भये सब जग जाना ॥ युग सहस्त्र योजन पर भानू । लीन्यो ताहि मधुर फल जानू । प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं । जलधि लांघि गई अचरज नाहीं ॥ दुर्गम काज जगतके जेते । सुगम अनुग्रह तुमरे तेते ॥ राम दुलारे तुम रखवारे । होत न आज्ञा बिन पैसारे । सब सुख लहैं तुम्हारी शरणा । तुम रक्षक काहु को डरना ॥ आपन तेज सम्हारो आपे , तीनों लोक हांकते कांपे । भूत पिशाच निकट नहीं आवे । महावीर जब नाम सुनावे । नाशै रोग हरे सब पीरा । जपत निरन्तर

हनुमत बीरा । संकट से हनुमान छुड़ावे मन क्रम वचन ध्यान जो लावे ॥ सब पर राम तपस्वी राजा तिनके काज सकल तुम साजा। और मनोरथ जो कोई लावे । तासु अमीत जीवन फल पावे ॥ चारों युग प्रताप तुम्हारा ॥ है प्रसिद्ध जगत उजियारा ॥ साधु सन्तन के तुम रखवारे। असुर निकन्दन रामो दुलारे अष्ट सिद्धि नवनिधि के दाता । असवर दीन्ह जानकी माता । राम रसायन तुम्हारे पासा ॥ सदा रहो रघुपति के दासा ॥ तुम्हारे भजनराम को भावै । जन्म जन्म के दुख बिसरावै । अन्त काल रघुवर पुर जाई । जहां जन्म ले भक्त कहाई ॥ और देवता चित न धरई । हनुमत सेव सर्व सुख करई । सँकट हरे मिटै सब पीरा । जो सुमरे हनुमत बल बीरा । जय जय जय हनुमान गोसाईं कृपा कर गुरुदेव की नाईं ॥ यह शत बार पाठ कर जोई । छुटहिं बन्दि महासुख होई ॥ जो यह पढ़े हनुमान चालिसा ।होये सिद्ध साखी गौरीशा ॥ तुलसी दास सदा हरि चेरा । कीजै नाथ हृदय महँ डेरा ॥

॥ दोहा ॥

पवण तनय सँकट हरण, मङ्गल मूर्ति रूप । राम लषण सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप ॥

॥ इति ॥

सँकट मोचन हनुमानाष्टक (३)

मत्तगयंद छन्द—बाल समय रवि भक्ष लियो, तब तीनहुं लोक भयो अंधियारो । ताहि सो त्रास भयो जग को यह सँकट काहु सो जात न टारो ॥ देवन आनि करी विनती तब, छाडि दियो रवि कष्ट निवारो ॥ को नहीं जानत है जग में, कपि सँकट मोचन नाम तिहारो । १ । बालि की त्रास-

चौंकि महा मुनि श्राप दियो, तब चाहिये कौन विचार कपीश सबै, गिरि जात प्रभु पंथ निहारो। सो तुम दास का शोक निवारो। को० । २ । अँगद के संग लेन गये, सिय खोज कपीश यह बैन उचारो। जीवत ना बचिहौ हमसों जु, विना सुधि लाए इहाँ पगु धारो। हारि थके तट सिन्धु सबै, तब लाय सिया सुधि प्राण उबारो। को । ३ । रावण त्रास दई सिया को जब राक्षसि मार के शोक निवारो। ताहि समय हनुमान महा प्रभु, जय महा रजनीचर मारो॥ चाहत सिय अशोक से आगि सुदै प्रभु मुद्रिका शोक निवारो। को० ।४। बाण लग्यो उर लक्ष्मण के तब प्राण तजो सुत रावण मारो। लै गृह वैद्य सुखेन समेत गिरि द्रोण सुबीर उपारो आन सँजीवन हाथ दई तब लक्ष्मण के तुम प्राण उबारो। को० । ५ । रावण युद्ध अजान कियो तब नाग के फाँस सबै सिर डारो। श्री रघुनाथ समेत सबै दल, मोह भयो यह संकट भारो। आनी खगेश तबै हनुमान सो बन्धन काटि सुत्रास निवारो। को० । ६। बन्धु समेत जबै अहिरावण, ले रघुनाथ पताल सिधारो। देवहिं पूजि भली विधि सो; बलिदेन सबै मिलि मन्त्र विचारो। जय सहाय भयो तब ही, अहिरावण सैन्य समेत संहारो। को० । ७ । काज कियो बड़ देवन के तुम वीर महा प्रभु देखि विचारो। कौन सो संकट मोर गरीब को जो तुमसो नहिं जात है टारो। बेगि हरो हनुमान महा प्रभु जो कुछ संकट होय हमारो॥ को० ॥ ८ ॥

दोहा—लाल देह लाली लसै अरुधर लाल लंगूर। बज्रदेह दानव दलन जय जय जय कपि शूर॥

यह अष्टक हनुमान को विरचित तुलसी दास। गंगा दास जु प्रेम से पढ़े होय दुःख नाश॥ इति॥

आरती बजरंग बलि की (४)

आरती कीजै हनुमान लला की । दुष्ट दलन रघुनाथ कला की । जाके बल से गिरवर कांपे । रोग दोष जाके निकट ना झांके ॥टेक॥ अंजनी पुत्र महा-बलदाई । सन्तन के तुम सदा सुहाई ।१। दे बीड़ा रघुनाथ पठाए । लंका जारी सिया सुध लाए ॥ लंक ऐसे कोट समुद्र ऐसी खाई । जात पवन सुत बार न लाई ।२। लंका जारी असुर सब मारे । सीता राम जी के काज संवारे ।३। लछमण मूर्छित पड़े धरणी में - आन सञ्जीवन प्राण उबारे ॥४॥ पहुँच पाताल मार धुनकारा । अहिरावण के भुजा उखारे ॥५॥ बांए भुजा कर असुरसंहारे । दाँई भुजा सब सन्त उबारे ॥६॥ सुरनर मुनिजन आरती उतारें । जय जय जय हनुमान उचारें ॥ ७ ॥ कञ्चन थार कपूर की बाती । आरती करत अञ्जनी माई ॥ ८ ॥ जो हनुमान जी की आरती गावे । बसे बैकुण्ठ अमर पद पावे । लंका विध्वंस किये रघुराई, तुलसी दास स्वामी आरती गाई ॥९॥ आरती कीजे हनुमान लला की, दुष्टदलन रघुनाथ कला की ॥१०॥

इति सङ्कट मोचन हनुमानाष्टक सम्पूर्णम् ॥

आरती ५

बोलो जय हनुमान विराजे बङ्का । जय जय महावीर विराजे बङ्का ।

अञ्जनी का पूत महाबल योधा । तीन भवन में तेरा डङ्का जय जय० ।

जलध लांघ सीया सुध लायो । राक्षस मार जलायो लङ्का जय जय० ।

अहिरावण के भुजा उखाड़यो । रावण के मन भयो शङ्का । जय जय ।

रावण मार विभीषण थाप्यो । जयजय रामजीकी भयोलङ्का । जय जय० ।

इति हनुमान चालीसा समाप्तः ।

आरती जय जगदीश हरे (६)

ओं जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे। भक्त जनों के सङ्कट क्षण में दूर करे
जो ध्यावे फल पावे दुःख विनशे मन का। सुख सम्पति घर आवे कष्ट मिटे तन का
मात पिता तुम मेरे शरण गहूं किस की । तुम बिन और न दूजा आश करूं जिस की
तुम पूर्ण परमात्मा तुम अन्तर्यामी । पार ब्रह्म परमेश्वर तुम सब के स्वामी
तुम करुणा के सागर तुम पालन कर्ता । मैं सेवक तुम स्वामी कृपा करो भर्ता ।
तुम हो एक अगोचर सब के प्राण पति । किसी विधि मिलूं गुसाईं तुम को मैं कुमति।
दीन बन्धु दुःख हर्ता ठाकुर तुम मेरे । अपने हाथ उठावो द्वार पड़ा तेरे।
विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा । श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ सन्तन की सेवा ।
ओं जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे । भक्त जनों के संकट क्षण में दूर करे।

आरती श्री रामचन्द्र जी की (७)

आरती कीजै—राजा रामचन्द्र की जै।

हर हर भगति करे तेरा नाम जपै, प्रभु जी अपना दर्शन दीजै। आरती कीजै०
पहिली आरती पुष्प की माला। आरती कर गए बाल गोपाला । आरती कीजै०
[illegible]

तीसरी आरती त्रिभुवन-मोहे । रत्न सिंहासन राजा रामचन्द्र सोहे । आरती कीजै०

चौथी आरती चहुँ युग पूजा । एक निरन्जन स्वामी और न दूजा । आरती कीजै०

पांचवीं आरती राम जी को भावे । राम जी के चरण हृदय में ध्यावे । आरती कीजै०

छवीं आरती सुन्दर ऐसी । ध्रुव प्रहलाद विभीषण जैसी । आरती कीजै०

सातवीं आरती सुने सुनावे । जन्म मरण दुःख कटिया जावे । आरती कीजै०

आरती श्री गंगा जी की (८)

ओं जय जय जय गंगे श्री जय जय गङ्गे । त्रिलोकी के तारण कष्ट निवारण भक्त उद्धारण कारण आई गङ्गे ओं जै० । आश्चर्य महिमा वेद सुनावें नर मुनि ज्ञानी ध्यान लगावें, तेरा हर गङ्गे ओं जै० । जो तेरी शरणागति जो आवें, जीवन मुक्ति इच्छित फल पावें श्री गङ्गे । पाप हरण मुक्तिके दाता, दर्शण काटे यम की त्रासा हर गङ्गे । लाल आरती जो कोई गावे, वह निश्चय अमर पद पावे । हर गङ्गे

इति श्री गङ्गा जी की आरती सम्पूर्णम्

आरती श्री दुर्गा जी की (९)

सुन मेरी देवी पर्वत वासिन कोई तेरा पार न पाया ।

पान सुपारी ध्वजा नारियल ले तेरी भेंट चढ़ाया । १ ।

सुई चोली तेरे अङ्ग विराजे केशर तिलक लगाया । २ ।

ब्रह्म वेद पढ़े द्वार तेरे शंकर ध्यान लगाया । ३ ।

नंगे २ पैरों माता अकबर आया सोने दा छत्तर चढ़ाया। ४।

ऊंचे २ पर्वत बन्यो शिवालो नीचे शहर वसाया। ५।

धूप दीप नैवेद्य आरती मोहन भोग लगाया। ६।

ध्यानु भगत तेरा गुण गावे मन वांछित फल पाया। ७।

सत्य नारायण की आरती (१०)

जय लक्ष्मी रमणा श्री जय लक्ष्मी रमणा। सत्यनरायण स्वामी जन पातक हरणा।

टेक—रत्न जड़ित सिंहासन अद्भुत छवि राजे। नारद करता निरन्तर घण्टा ध्वनि बाजै। जय०।

प्रगट भये कलिकारण द्विज को दरश दियो। बूढ़ो ब्राह्मण बन के कँचन महल कियो।

दुर्बल भील कराल की जिन पर कृपा करी चन्द्र चूड़ एक राजा जिन की विपता हारी। जय०।

वैश्य मनोरथ पायो श्रद्धा तज दीनी। सो फल भोग्यो प्रभु जी फिर स्तुति कीनी। जय०।

भाव भक्ति के छिन छिन रूप धरयो। श्रद्धा धारण कीनी जन को काज सरयो। जय०।

ग्वाला बाल संग राजा वन में भक्ति करी। मन वांछित फल दीनी दिन दयालु हरि। जय०।

चढ़त प्रसाद सवाया कदली फल मेवा। धूप दीप तुलसी से राजी सत्य देवा। जय०।

श्री सत्यु नरायणजी की आरती जो कोई जन गावै। मणिदास सम्पत्ति मन वांछित फल पावै। जय०।

आरती श्री कृष्ण जी की (११)

ओ३म जय श्री कृष्ण हरे प्रभु जय श्री कृष्ण हरे।
भगतन के दुःख सारे पल में दूर करे ! जय श्री कृष्ण हरे ॥

परमानन्द मुरारी मोहन गिरधारी, जै रस रास विहारी जै गिरवरधारी। ओ३म जय०
कर कँकट कटि कँकन श्रुति कुण्डल वाला, मोर मुकट पीताम्बर सोहे बनमाला। ओ३म जय०
दीन सुदामा तारे दरिद्र दुःख टारे, गज के फन्द छुड़ाये भव सागर तारे। ओ३म जय०
हिरणाकश्यप सहारे नर हरि रूप धरे, वाहन ते प्रभु प्रगटे जन के बीच पड़े। ओ३म जय०
केशी केश विदारे नर कुबेर तारे, दामोदर छवि सुन्दर भगता रखवारे। ओ३म जय०
काली नाग नथैया नटवर छवि सोहे, फन फन नृत्य करत ही नागन मनमोहे। ओ३म जय०
राज्य विभीषण थापे सीता शोक हरे, द्रुपदसुता पति राखी करुणा लाज भरे। ओ३म जय०

आरती श्री तुलसी जी की (१२)

जय २ तुलसी माता सब जग की सुख दाता वर दाता। जय०
सब योगों के ऊपर सब रोगों के ऊपर। रुज से रक्षा, भाव त्राता। जय०
बहु पुत्री हे श्यामा, सूर वल्ली ग्राम्य। विष्णु प्रिय जो तुम को सेवे, सो तर जाता। जय०
हरि के शीश विराजित, त्रिभुवन से हों वँदित। पतित जनों की तारिणि, तुम ही विख्याता। जय०

लेकर कन्द विजन में आई दिव्य भवन में । मानव लोक तुम्ही ने सुख सम्पति पाता । जय०

हरिको तुम अति प्यारा ही, श्यामवरण सुकुमारी । प्रेम अजब है उनका, तुम से है नाता । जय०

आरती यमुना जी की (१३)

जय भानु-सुता सुख दानी वरदानीं । जय जय यमुने महारानी ।

टेक—जय रविजा जय जय अघ छैनी । नय जय कलिन्दता स्वर्ग नसैनी ।

यम के त्रास मिटानी जग जानी । १ ।

जय जय-भगिनी जय वरदानीं । जय सुर वँदित जय हो भवानी ।

अद्भुत महिमा मानी बखानी । २ ।

जय निज जन के संकट हरनी । महिमा अद्भुत वेदन वरनी ।

मोहन की पटरानी पहिचानी । ३ ।

जय भवसागर तारिनी माता । कृपा करो जन आनन्द दाता ।

अगम मुकुन्द बखानी सन मानी । ४ ।

पारवती देवी की आरती (१७)

जय पार्वती माता जय पार्वती माता । ब्रह्म सनातन देवी शुभ फल की दाता ॥ टेक ॥

अपिकुल पद्म विनाशनि जय सेवक त्राता । जग जीवन जगदम्बा हरिगुण यश गाता । जय० । १ ।

सिंह जो वाहन साजे कुण्डल दे साथा। देव वधू जहं गावत नृत्य करत गाथा। जय०। २।
सतयुग रूपशील अति सुन्दर नाम सती कहलाता। हेमाचल घर जन्मी सखियन संग राता। जय। ३।
कहलाती शुम्भ निशुम्भ विडारे हेमाचल स्थाना। सहस्त्र भुजा तन धर के चक्र लिया हाथा। जय। ४।
सृष्टि रूप तू ही है जन्मी शिव संग रंग राती। नन्दी भृङ्गी वाला लही साथ मदमाती। जय। ५।
देवन अरज करत हम चित्त को लाता। गावत दे दे ताली मन में रंग भाता। जय०। ६।
श्री प्रताप आरती देव की जो गाता। सदा सुखी नित रहत सुख सम्पत्ति पाता। जय०। ७।

आरती श्री लक्ष्मी जी की (१५)

जय लक्ष्मी माता जय जय लक्ष्मी माता। तुम को निशदिन सेवत हर विष्णु धाता।
ब्रह्मणी रुद्राणी कमला तुम ही है जग माता। सूर्य चन्द्रमा ध्यावत नारद ऋषि गाता।
दुर्गा रूप निरञ्जन सुख सम्पत्ति दाता। जो कोई तुम को ध्यावे ऋद्धि सिद्धि पाता। जय०
तूही है पताल बसनी तूही है शुभ दाता। प्रभाव कर्म प्रकाश जगनिधि से त्राता। जय०
जिस घर थारे वास ताहि में गुण आता। कर सके सोई कर ले मन नहीं धड़काता। जय०
तुम बिन यज्ञ न होवे वस्त्र न कोई पाता। खान पान को वैभव तुम सब का दाता। जय०
शुभ गुण सुन्दर युक्ता खीर निधि जाता। रत्न चतुर्दश तोकूं कोई नहीं पाता। जय०
श्री लक्ष्मी जी की आरती जो कोई जन गाता। उर उमँग अति उपजे पाप उत्तर जाता। जय०
थिर चर जगत बचाये शुभ कर्म नर लाता। राम प्रताप मैया की शुभ दृष्टि चाहता। जय०

एक शलोकी भागवत (१६)

आदौ देवकी देवगभ जननँ गोपीगृहे वर्द्धनम् माया पूजन जीवतापहरणँ गोवर्धनोद्धारणम्। कँसाच्छेदनो कौरवादि हननँ कुन्तीसुतापालनम् । एतद् श्री मद्भगवत पुराण कथित्तं श्री कृष्ण लीलासमृतम्

एक शलोकी महाभारत (१७)

आदौ पांडव धृतराष्ट्र जननँ लाक्षागृहे दाहनम् । द्यूतं श्री हरणं, मत्स्याख्ये वेधनं ॥ लीला गोहरण रणेऽवतीर्ण सँधि क्रिया वर्द्धनम् । पश्चाद भीष्म, कौरवादि हननं, एतद् महाभारतम् ॥

एक शलोकी श्री रामायण (१८)

आदौ रामतपो वनादिगमनँ हत्वा मृगं कांचनम । वैदेहीहरणं जटायु मरणं सुग्रीव सन्भाषणम । वाली निग्रहणं समुद्र तरणँ लंकापुरी दाहनम । पश्चाद्रावण कुम्भकरण मरणँ एतद्धिरामायणम ।

कमल नेत्र स्तोंतर (१९)

श्री कमलनेत्र कटि पीताम्बर अधर मुरली गिरधरम् ।
मुकट कुण्डल करल कुटिया सांवरे राधे वरम् ।१।
कूल यमुना धेनु आगे सकल गोपियन के मन हरम् ।
पीत वस्तर गरुड़ वाहन चरण सुख नित सागरम् । २ ।

निशि दिन कुंज भवन उजागरम् ।
करत केल कलोल निशि दिन कुंज भवन उजागरम् । ३ ।
अचल अमर अडोल निश्चल पुरुषोत्तम अपरापरम् ।
दीनानाथ दयालु गिरधर कंस हरणाकश हरम् । ४ ।
गल फूल माल विशाल लोचन अधिक सुन्दर केशवम् ।
वंशीधर वसुदेव छैय्या बली चन्यो हरि वावनम् । ५ ।
जल डूबते गज राख लीनों लंका छेद्यो रावणम् ।
सप्त द्वीप नव खंड चौदा भवन कीने राम जी एक पलम् । ६ ।
द्रोपदी जी की लाज राखी कहां लों उपमा करम् ।
दीना नाथ दयालु पूरण करुणामय करुणा करम् । ७ ।
कविदत्त दास विलास निशिदिन नामजपत नितनागरम् ।
प्रथम गुरु जी के चरण वन्दों यस्य ज्ञान प्रकाशितम् । ८ ।
आदि विष्णु, जुगादि ब्रह्मा सेवत शिव शङ्करम् ।
श्री कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण यदुपति केशवम् ।
श्री राम रघुवर राम रघुवर राम रघुवर रघुवरम् । ९ ।
श्री राम कृष्ण गोविन्द माधव वासुदेव, श्री वावनम् ।
मच्छ, कच्छ, वराह नरसिंह पाहि रघुपति पावनम् । १० ।

श्री वृन्दावन में मदन मोहन गोपीनाथ गोविन्द जी । ११ ।

धन्य मथुरा धन्य गोकुल जहां श्री मति अवतरे ।
धन्य यमुना का नीर निर्मल ग्वाल बाल सखावरे । १२ ।

नवनीत नागर करत निरतन शिव विरिञ्च मनमोहिनम् ।
कालिन्द्री तट करत क्रीड़ा बाल अदभुत सुन्दरम् ।१३ ।

ग्वाल बाल सब सखा विराजे संग राधे भामिनी ।
ग्वाल बाल सब सख विराजे संग राधे भामिनी ।
बंसी वट तट निकट यमुना मुरली की टेर सुहानी । १४ ।

भज राधवे रघुवंश उत्तम परम राज कुमार जी ।
सीता के पतिभगतन के गति जगत प्राण आधार जी । १५ ।

जनक राजा पणक राखो धनुष बाण चढ़ा वहीं ।
सती सीता नाम जाके श्री राम चन्द्र प्रनावही । १६ ।

जन्म मथुरा खेल गोकुल नन्द के हीर नन्दनम् ।
बाल लीला पतित पावन वासुदेव वासुदेवकम् । १७ ।

श्री कृष्ण कलिमल हरण जाके जो भजे हरिचरण को ।
भक्ति अपनी देहूं माधव भव सागर के तरण को । १८ ।